उपयोगी साहित्य माला—५

रत्न-परिचय

AN INTRODUCTION TO PRECIOUS STONES

संग्रहीता-लेखक ·
हरिश्चन्द्र विद्यालंकार
ज्योतिर्विद् जगन्नाथ भसीन

प्रकाशक
गोयल एण्ड कम्पनी, दरीबा, दिल्ली-६

प्रकाशक :
गोयल एण्ड कम्पनी
दरीबा, दिल्ली-६

मूल्य पांच रुपये

प्रथम सस्करण
दीपावली, सवत् २०२७

मुद्रक
राष्ट्रभाषा कम्पोजिंग एजेन्सी
दिल्ली-६

एक दृष्टि में

भारत में रत्न धारण प्रथा पुरानी
रत्नों में दैवी शक्ति कोरा अन्ध विश्वास
वहम अथवा बहकावा ? नहीं !
असली और नकली की पहचान
लग्न के अनुकूल रत्न चुनिये
स्त्रियों के लिये चुनाव का विशेष नियम
अनिष्ट ग्रह को और बलवान् न बनने दीजिये
नौकरी में उन्नति रुके तो कौन सा रत्न पहने ?

माणिक्य—विपदा का पूर्व सूचक
मोती—हृदय को बलदायक
मूंगा—सस्ता पर अधिक गुणी
पन्ना—नेत्रशक्ति का मित्र
पुखराज—कुष्ठ और बवासीर का शत्रु
हीरा—वैवाहिक जीवन में मधुरता
नीलम—शीघ्र प्रभाव दिखाने वाला,
गज और रूसी मे लाभप्रद
गोमेदक—चर्म रोगो में विशेष लाभदायक
लहसनिया—दुर्घटना तथा शत्रुओं से बचाने वाला
उपरत्न—पन्द्रह उपरत्नों का वर्णन

शोध पूर्ण रचना—(Research Work)

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक जिज्ञासु पाठकों के हाथ में समर्पित करते हुए इस के सम्बन्ध में दो शब्द कहना भी उचित होगा। पुस्तक की सामग्री सस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी के प्रामाणिक तथा आधुनिकतम ग्रन्थों से ली गयी है। जिन ग्रन्थों से सामग्री ली गयी है वे ज्योतिष, चिकित्सा, खनिज विज्ञान तथा रत्न-विज्ञान से सम्बद्ध हैं। नूतनतम अंग्रेजी-हिन्दी के विश्वकोषों का भी उपयोग किया गया है। अभि-प्राय यह है कि रत्नों के सम्बन्ध में जिज्ञासुओं की ज्ञान-पिपासा की तृप्ति के लिये, यथासम्भव, सुशीतल और सुमधुर, "पुष्टिप्रद पेय जुटाने का यत्न किया गया है। और साथ ही ठोस विषय के रहस्य को समझाने के लिये सुबोध परन्तु साथ ही वैज्ञानिक भाषा का प्रयोग किया गया है। आशा है कि पाठक इसका सदुपयोग कर सकेंगे।

संकलनकर्ता उन सब ग्रन्थ लेखकों तथा सहायकों का भी आभारी है कि जिनकी रचनाओं से यह सामग्री ली गयी है, यद्यपि सब स्थानों पर सबका नाम लेना सम्भव नही हुआ है ।

दीपावली, सवत् २०२७
२९ अक्तूबर, सन् १९७०

संग्रहीता
हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

विषय-सूची

रत्नों का सामान्य परिचय

प्राचीनता तथा प्रभाव

१

ऋग्वेद के पहले ही मंत्र में रत्न' शब्द : अग्नि व ताप से रत्नों की रचना : भारत में रत्नधारण की प्रथा पुरानी : रोगों-से बचा रखने तथा उनको दूर करने की रत्नो की शक्ति : रत्नों में दैवी शक्ति क्या यह कोरा अन्धविश्वास है ? नहीं : प्रयोग करने के वालों के अपने-अपने अनुभव ।

'रत्न' शब्द की प्राचीनता—जहा तक 'रत्न' शब्द की प्राचीनता का सम्वन्ध है, ससार के सब से अधिक प्राचीन शब्दो में इसकी गिनती है। आज सभी विद्वान् इस बात से सहमत है कि 'ऋग्वेद' ससार का सबसे पहला ग्रन्थ है। वैदिक धर्मी तो वेदो को परम पिता परमात्मा की वाणी मानते ही है। उनके लिये तो इससे अधिक प्राचीन ग्रन्थ कोई दूसरा हो ही नही सकता। परन्तु पश्चिमी विद्वान् भी 'ऋग्वेद' से अधिक प्राचीन किसी ग्रन्थ की खोज आज तक नही कर पाये है। ऋग्वेद के अनेक मत्रों में 'रत्न' शब्द आया है। इस महान् ग्रन्थ के सबसे पहले ही मत्र में 'अग्नि' को 'रत्नधातमम्' कहा है। (**अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् । ऋ० १-१-१**) ।

वेदो के आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक आदि अनेक प्रकार से अर्थ किये जाते है। आधिभौतिक अर्थ से यहा यह बात तो सर्वथा स्पष्ट है कि अग्नि रत्नो या पदार्थो का सर्वोत्तम धारक और उत्पादक है। इस पद (धातमम्) मे आये 'धा' धातु के अनेक अर्थो मे एक अर्थ उत्पन्न करना भी है।

अग्नि को रत्न पदार्थो का उत्पादक कहने से क्या-क्या अभिप्राय हो सकते हैं—इसका विस्तार से विवेचन करना प्रसग से बाहर की बात है। परन्तु इससे इतनी वात तो सर्वथा स्पष्ट ही प्रतीत होती है कि 'अग्नि' की शक्ति के सम्पर्क से 'रत्न' बनते हैं। आश्चर्य है कि आज के वैज्ञानिक भी इसी परिणाम पर पहुँचे है। रत्न कैसे बनते है—इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अमरीकी विश्व-कोष ने 'Gemstones' शब्द पर टिप्पणी देते हुए स्पष्ट लिखा है कि 'अधिकाश रत्न प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से 'ताप-प्रक्रिया' के परिणाम है।' हा, असाधारण रूप से जब दशाये अनुकूल होती हैं—तभी विविध तत्वो के रासायनिक मेल से विविध रत्न बन पाते है। रत्नो के बनने की प्रक्रिया की व्याख्या करते हुए आधुनिक वैज्ञानिक बताते है कि कार्बन आदि तत्त्वो के परमाणु बहुत अधिक ताप (गरमी) व अत्यधिक दबाव के प्रभाव में आ कर आपस मे इतने और इस प्रकार जुड जाते हैं—सश्लिष्ट हो जाते है कि वे एक निश्चित क्रम अथवा व्यवस्था मे आ जाते है। अब वे एक विशेष प्रकार के चमकदार पदार्थ वन जाते है—जिन्हे हम 'रवा' स्फटिक, मणिभ अथवा क्रिस्टल (Crystal) कहते हैं। पृथ्वी के भीतर इस प्रकार बने कुछ रवो मे कई ऐसी अद्भुत विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती है कि देखने वाले को वे प्यारे लगने लगते है—बस तो रत्न' पदार्थ वही कहलाये कि जिनमे मनुष्य का मन रमा; मनुष्य पहले पहल तो इनके ऊपरी सौन्दर्य से मुग्ध हुआ

और वाद में प्रयोग करके इनके गुणों पर मुग्ध हुआ। (**रमन्ते अस्मिन् अतीव अतः रत्नम् इति प्रोक्तं शब्दशास्त्रविशरदैः**—आयुर्वेद प्रकाश ५-२)।

अग्नि संयोग से रत्न-रचना—अग्नि अथवा ताप के सयोग से हुई तत्त्वों की एक विशेष व्यवस्था से 'रत्न' बनते हैं—आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस बात को आज तथ्य करके भी दिखा दिया है। सबसे पहले सन् १८७८ में दो फ्रासीसी वैज्ञानिको, 'फ्रेमी' तथा 'फील' ने प्रयोगशाला मे माणिक्य-सा चमकीला पदार्थ बनाया। १६०४ में तो फिर फ्रासीसी रसायन शास्त्री वरनुई ने सश्लिष्ट माणिक्य और नीलम बनाकर बाजार में भेज दिये। इससे पहले भी नकली रत्न बनाये जाते थे—परन्तु तब या तो कॉच के मणके बनाकर उन्हे रत्नो जैसा रूप दे दिया जाता था अथवा असली रत्न के टूटे-फूटे, छोटे-छोटे टुकडो को गरमी देकर आपस मे जोड दिया जाता था—और इन्हे 'पुन. बनाये गये' (recoustrncted) रत्न कहा जाता था। किन-किन रत्नो के नकली अथवा वनावटी रत्न बनाये जाते हैं—इसका वर्णन तो हम आगे चल कर उन रत्नो के प्रसग मे ही करेगे—यहा तो हम यही दिखा रहे थे कि ऋग्वेद के प्रथम मत्र में 'रत्न' की रचना में 'अग्नि' की जिस महत्वपूर्ण भूमिका की ओर इशारा किया गया है, वह सर्वथा वैज्ञानिक सचाई है। आम बोल चाल मे हम प्रत्येक जाति के सर्वोत्तम पदार्थ अथवा व्यक्ति को भी 'रत्न' कहते हैं। समुद्र मन्थन से जो चौदह रत्न देवताओं को मिले थे—वे संसार के सर्वश्रेष्ठ पदार्थ है। विक्रम ने अपनी सभा में अपने समय के सर्वश्रेष्ठ नौ विद्वान् एकत्रित किये थे—वे 'नव रत्न' कहलाते थे। आज भी हम 'पुरुप रत्न' आदि शब्दो का प्रयोग करते ही हैं। पुरुष भी तो किन्ही विशेष नियमों का लगातार पालन रूप 'तप' कर के ही 'रत्न' की पदवी प्राप्त कर पाता है।

भारत में रत्नधारण की प्रथा—भारत मे रत्नो के धारण करने की प्रथा वहुत पुरानी है। ऋग्वेद मे 'रत्न' शब्द के आने की बात हम कह आये है। इसी वेद के छठे मडल के १६ वे सूक्त के १० वे मत्र मे तो रत्न-धारण करने का सकेत स्पष्ट ही है। वेदो मे 'वज्र' (हीरा) तथा भुजाओ पर व हाथ मे, वज्रधारण करने वाले वृत्र का वध करने वाले इन्द्र का उल्लेख हुआ ही है। वैदिक साहित्य मे इन शब्दो का कोई दूसरा अर्थ भी, भले ही रहा हो, परन्तु अग्नि-पुराण, गरुड पुराण, देवी भागवत, महाभारत, विष्णुधर्मोत्तर आदि प्राचीन ग्रन्थो मे तो हीरा, माणिक्य, नीलम, पन्ना आदि विविध महारत्नो तथा रत्नो के नाम, प्राप्ति स्थान, विशेष लक्षण, गुण-दोष, उन की परख, शुभता-अशुभता आदि का काफी विस्तार से वर्णन है। ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ वराह-मिहिर रचित '**बृहत्संहिता**' मे रत्नो के गुण-दोषो का अच्छा खासा विवरण दिया है। '**भाव-प्रकाश**,' '**रसरत्नसमुच्चय**' 'आयुर्वेद-प्रकाश' आदि चिकित्सा-ग्रन्थो मे विविध रत्नो की भस्मो और पिष्टियो के बनाने के तरीके तथा रोगो मे उनके प्रयोग के तरीके बताये है, साथ ही यह भी लिखा है कि केवल धारण करने से भी कितने ही रत्न अपनी रोग-नाशक शक्ति का चमत्कार दिखाते है। आगे चलकर सस्कृत के महाकवियो—अश्वघोष, कालिदास आदि ने रत्नो के रूपवैभव का उपयोग अपने पात्रो के लिये उपमान ढूँढने मे किया है। अगस्ति-मत, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, शुक्रनीति आदि नीति-ग्रन्थो मे भी रत्नो की विस्तृत चर्चा है। प्राकृत भाषाओ मे भी 'नवरत्न परीक्षा', 'रत्न सग्रह' 'रत्नसमुच्चय' आदि रत्नपरीक्षा विषयक अनेक ग्रन्थ उपलब्ध है। रत्नो के विषय मे अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ भी इधर-उधर बिखरे सुनायी पड रहे हैं।

आभूषणो मे नग (रत्न) जडने की कला का आविष्कार

भारतीयो ने ईसा से लगभग २८०० वर्ष पहले ही कर लिया था। रत्नो को घिस कर उस पर पहल देने का काम भी भारतीयो ने लगभग तभी शुरु कर दिया था, क्योकि इस प्रकार का पहल दिया हुआ एक मनका सिधुघाटी की सभ्यता के चान्हूदाडो नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। प्रसिद्ध विदेशी यात्री वर्नियर (१६ वी सदी) के समय, जैसा कि उसने लिखा है, भारत मे हीरों के प्राकृतिक घाटो पर ही पहलो की बदिश की जाती थी और इस प्रकार उनके दोषो को छिपाया जाता था।

रत्नों में दैवी शक्ति—हमारे प्राचीन शास्त्रो तथा परम्परा से चली आ रही लोक श्रुतियों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय रत्नो की दैवी शक्ति में पूर्ण विश्वास करते थे। और उनका यह विश्वास कोरा अंधविश्वास ही रहा हो, यह भी नही कहा जा सकता। हमारे प्राचीन अनुभवी विद्वान् चिकित्सा शास्त्र पर अनेक दुर्लभ ग्रन्थ लिखकर छोड गये हैं। शार्ङ्गधर सहिता उनमें एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है; इस के दूसरे अध्याय का तेरहवाँ श्लोक इस प्रकार है —

द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च।
सम्बन्धेन क्रमादेता. पञ्चावस्थाः प्रकीर्तिताः ॥१३

अर्थात् प्रत्येक वस्तु की अपनी पाच अवस्थाये अथवा गुण होते है—छ. प्रकार के—मधुर (मीठा), अम्ल (खट्टा) आदि रस; गुरु (भारीपन), चिकनाई (स्निग्ध) आदि पाच गुण; उष्ण तथा शीत—ये दो वीर्य; मधुर, अम्ल तथा कटु—ये तीन विपाक (परिणाम) और प्रभाव अथवा शक्ति। इनमे चार अवस्थाये तो किसी भी वस्तु को खाने पर अपना-अपना रूप दिखाती हैं—परन्तु उसकी शक्ति अथवा प्रभाव का असर धारण करने से ही दिखाई देता है। जैसे आँवला रस, गुण, वीर्य तथा विपाक में बड़हल के

समान है परन्तु अपने प्रभाव से त्रिदोष का नाशक है। आगे वे लिखते है—

क्वचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात् प्रभावतः ।
ज्वरं हन्ति शिरो बद्धा सहदेवी जटा यथा ।। २-२२

प्रत्येक वस्तु मे स्थित रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति (प्रभाव) अपना-अपना काम करते है। परन्तु कही-कही द्रव्य में रहने वाला प्रभाव ही अपना कौतुक दिखाता है। सहदेवी की जटा को सिर मे बाध लेने पर बुखार जाता रहता है। बस, रत्नो मे भी अपनी-अपनी शक्ति अथवा प्रभाव का होना सर्वथा सम्भावित है।

परन्तु जैसे विभिन्न-भिन्न वस्तुओ को जानवरो और आदमियो को खिला-खिलाकर उनको औषधि रूप मे स्वीकार किया गया है; वैसे ही **रत्नो की शक्ति** का निश्चय भी अनेक प्रयोगो से ही सम्भव है। भिन्न-भिन्न रत्नो की क्या-क्या शक्तिया है, कौन सा रत्न, किस मात्रा में और कब धारण करना चाहिये—इस के विषय मे किये गये किन्ही सुनिश्चित प्रयोगो और परीक्षणो का व्यौरा हमे प्राप्त नही होता। फिर भी कुछ उल्लेख तो मिलते ही है—जैसे ज्योतिषी माणिक्य को सूर्य का, मोती को चन्द्रमा का, पुष्पराज अथवा पुखराज को बृहस्पति का, गोमेद (Hessonite) को राहु का, पन्ने को बुध का, हीरे को शुक्र का, बिडालाक्ष को केतु का और नीलम को शनि का प्रतिनिधि रत्न मानते हैं। अभिप्राय यह है कि जिन व्यक्तियो की जन्म कुडली मे ये-ये ग्रह पाप प्रभाव मे हो अथवा निर्बल हो, उनको उनके प्रतिनिधि रत्न धारण करने चाहिये। इसी प्रकार के भिन्न-भिन्न रत्नो के भिन्न-भिन्न जो प्रभाव बताये गये हैं अथवा सुनाये गये हैं—उन का मूल आधार सब पदार्थो मे काम करने वाला यह सामान्य सिद्धान्त ही है कि प्रत्येक पदार्थ मे रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति—ये पाच बाते प्रकृति से स्थित होती

है—और ये मिलाकर तथा अलग-अलग अपना-अपना काम करती है और **कहीं-कहीं तो द्रव्य केवल अपने प्रभाव (शक्ति) से ही अद्भुत कार्य करता दिखायी पड़ता है।** इस पुस्तक में प्रत्येक रत्न के वर्णन में इन शक्तियों का उल्लेख उचित स्थान पर किया गया है।

पद्मभूषण पं० सूर्यनारायण व्यास की सम्मति—रत्नों के धारण करने के प्रभावों के सम्बन्ध में लिखते हुए प्रसिद्ध ज्योतिषी, पद्मभूपण, श्री सूर्यनारायण व्यास ने 'रत्नों की वैज्ञानिक उपयोगिता और परिचय' शीर्षक लेख के अन्त में साररूप में निम्नलिखित शब्द लिखे हैं—"विभिन्न रत्नों के विभिन्न प्रयोग और उनके परिणामों की गाथा अत्यन्त मनोरजक है। हमारा अपना तो यह विश्वास है कि जिस ग्रह के प्रभाव से जो रत्न अथवा धातु प्रभावित है, उसका प्रयोग उस ग्रह के विकृत समय मे, विचार-परीक्षण पूर्वक किया जाये तो आश्चर्यजनक परिणामकारी सिद्ध होता है। अवश्य ही उसका प्रयोग और परीक्षण, शरीर की प्रकृति के ग्रहजन्य प्रभाव के न्यूनाधिक स्वरूप में निर्माण के निर्णय के पश्चात् ही रत्नधातु के तत्त्व-सन्तुलन-दृष्टि से किया जाना ही उपयोगी हो सकता है। इसमें सूक्ष्मावलोकन क्षमता की अपेक्षा है।" ('रत्नपरीक्षा' जयपुर से साभार)

कोरा अन्धविश्वास, वहम अथवा बहकावा?—नहीं! आज कल के वैज्ञानिक इस बात को कोरा अन्धविश्वास ही मानते हैं कि रत्नों में कोई दैवी शक्ति होती है—वे कहते है कि जैसे होशियार जादूगर तरह-तरह के खेल दिखाकर लोगों को बहकाते है—ऐसे ही रत्नों मे किसी प्रकार की दैवी शक्ति होने का विश्वास निरा वहम है और मनुष्य चतुर लोगों के बहकाने में आकर ऐसा समझने लगता है। परन्तु इतिहास की इस सच्चाई से कोई इन्कार नहीं

करता कि अति प्राचीन काल से ससार के सभी देशों में, सभी जातियो, सम्प्रदायो और भिन्न-भिन्न धर्मो के मानने वाले स्त्री-पुरुष रत्नों का आदर और सम्मान केवल शरीर आदि को सजाने के लिये ही नही करते थे—बल्कि रत्न, गण्डे और तावीजो—रक्षा-कवच के रूप मे भी धारण किये जाते थे।

यूरोप की मान्यताए—यूरोप आदि पश्चिमी देशो की बात लीजिये—वहाँ शुरू-शुरू मे अम्बर मोती, मू गा, माणिक्य, बिल्लौर और सुलेमानी पत्थर कीमती पत्थर माने जाते थे। जिन खनिजों के पहलू समतल और चमकते दिखायी दिये पहले पहल उन सभी को 'रत्न' माना गया। बाद मे उनका विचार हुआ कि किसी पदार्थ को सच्चा रत्न बनाने के लिये सूर्य की गरमी की बहुत आवश्यकता है, कारण इसका सम्भवत यह रहा होगा कि उस समय रत्न-पाषण पूर्वीय देशो—भारत लका, वर्मा आदि से ही उपलब्ध होते होगे। और इसीलिये वेचने के लिये वे आवाज लगाते थे—'प्राच्य' बिडालाक्ष, 'प्राच्य' 'पुखराज 'प्राच्य' पन्ना। यह वात ठीक ऐसी ही है कि जैसे कि सब्जी-फल बेचने वाले आवाज लगाते हैं, 'चमन के अगूर' कश्मीरी सेव' कन्धारी अनार'—भले ही ये सभी अपने देश मे पैदा हुए है। इसी कारण रत्नो के जो नाम आज प्रसिद्ध है, पहले उन्ही रत्नो के दूसरे नाम प्रसिद्ध रहना कोई आश्चर्य की बात नही है। वाइबल मे जो नाम आते है आज उन्ही नामो से प्रसिद्ध रत्नो के दूसरे नाम प्रचलित होना सर्वथा सम्भव है। जैसे भारत मे ९ ग्रहो के प्रतिनिधि ९ भिन्न-भिन्न रत्न माने जाते हैं वैसे ही यहूदियो के बारह कबीलो के १२ भिन्न-भिन्न रत्न माने जाते थे। बाइबल मे ऐसे-ऐसे वाक्य मिलते है—'साधु चरित्र वाली स्त्री को कौन खोज सकता है? क्योकि उसका मूल्य तो लालमणियो से भी अधिक होगा।" मै तेरी नीव नीलमो से भरू गा, तेरी खिडकिया गोमेद-

कों की और दरवाजे मणिक्यो के वनाऊंगा और तेरे किनारे प्यारे-प्यारे रत्नों से सजाऊंगा ।" मिश्र के रत्नों से मुहरें अथवा अंगूठिया भी प्राचीन समय मे बनायी जाती थी क्योंकि वहा से भूमि में दवे हुए मिश्री भृंग अथवा गुवरैले के आकार की कटी हुई मणिया आज निकाली जा रही हैं।

और वाद के जमाने में अरव तथा यूरोप के लोग रत्नो को क्या समझते थे—इस विषय में प्लिनी के लेख हमें बहुत कुछ वताते है। अम्वर की रचना के विषय में प्लिनी के विचार वडे ही अद्भुत हैं—वह लिखता है कि फीटन की वहने मजनू के पेड वन गयी थी—उन्ही के आसू अम्वर बने। आज भी लोग यह मानते हैं कि अम्वर से गठिया आदि वायु-रोग शात होते हैं। जर्मनी मे लोग शिशुओ के गले में अम्बर मणिमाला वाधते थे—उनका विश्वास था कि इससे दांत निकलते समय उन्हे कष्ट नही होता। तुर्क लोग हुक्के की नली के अगले भाग में अम्बर इस प्रयोजन से लगाते थे कि इस प्रकार रोगजनक कीटाणु तग नही करते। यूनानी समझते थे कि नीलम के प्याले से पी गयी मदिरा नशा नही करती। यहूदियो की मान्यता थी कि नीलम पहनने वाले को सुखद सपने आते है। रोमन स्त्रियों की मान्यता थी कि नीलम पहनने से उनके प्रति उनके पतियों का प्रेम स्थायी रहता है। एक जर्मन लेखक ने लिखा है कि लालमणि पहनने से चोरों का भय नही रहता। सर प्लैट (१५९४ ई०) ने लिखा है कि 'मूंगे पहनने वाला जब रोगी होने को होता है तो मूंगों का रग फीका पड़ जाता है; और उसके अच्छा हो जाने पर उनका रग फिर वैसा ही हो जाता है। जैसाकि हमारे प्राचीन ग्रन्थो में लिखा है और साहित्यिको ने कल्पना की है कि स्वाती नक्षत्र के उदय होने पर वर्षा की जो बूंद सीपी के मुंह में पड़ती है, वही उसके पेट में जाकर मोती वन जाती है, प्लिनी और डायोस्कॉडिस

भी यही समझते थे। और आधुनिक समय की बाते लीजिये—कहते हैं कि रानी एलिजाबेथ ने जब रायल एक्सचेंज मे सर थॉमस ग्रेशम से भेट की तो वहा उसकी स्वास्थ्य कामना के लिये सर थामस ने जिस प्याले मे शराब पी थी उसमे १५००० पौड मूल्य का मोती पीस कर डाला गया था। प्राचीन समय मे मणिक्य को विषनाशक, शोक दूर करने वाला, मन को बुरे विचारो से दूर हटाकर सुविचारो मे लगाने की शक्ति से युक्त, माना जाता था।

भिन्न-भिन्न प्रकार के रत्नो और महारत्नो और उपारत्नो के विषय मे ऐसी ही मान्यताएँ न जाने कब से प्रचलित हैं और आज विज्ञान के युग मे भी उन पर विश्वास रखने वाले लोगो की कमी नही है।

प्रतीत ऐसा होता है कि पदार्थों की शक्ति अथवा प्रभाव के सम्बन्ध मे जिन लोगो ने प्रयोग किये उन्होने जैसा देखा अथवा अनुभव किया वैसा लोगो को बताया; सम्भव है कि इनमे परस्पर विरोध अथवा अन्तर भी रहे हो। उदाहरण के लिये भारत के इतिहास मे ऐसी कहानिया प्रचलित हैं कि लोगो ने विशेषतया राजकीय महिलाओं ने, अपने मान-सम्मान पर आयी विपत्ति के समय अगूठी मे की हीरे की कनी चाट कर अपने प्राण छोड दिये। परन्तु इसी सम्बन्ध मे सन् १६४६ मे लिखी 'रत्नावली' नाम की पुस्तिका के पृष्ठ ७६ पर अपने समय के प्रसिद्ध लेखक सूफी लक्ष्मण प्रसाद लिखते हैं—" मे जो यह लिखा है कि 'अल्मास (हीरा) चाटने से आदमी मर जाता है'—बिल्कुल गलत है, मैं स्वय हजारो बार हीरा चाट चुका हू और जीवित हू।' आगे वे लिखते है हीरा पहनने से धन-दौलत मिलती है"—आदि।

रत्न चिकित्सा में नया प्रयोग—रत्नो की दैवी और रोगो की चिकित्सा सम्बन्धी शक्तियो के विषय मे इधर कुछ नये प्रयोग भी

प्रकाशित हुए है। डा० विनयतोष भट्टाचार्य, एम ए, पी-एच डी ने रत्न-चिकित्सा के नाम से एक विचारयोग्य पुस्तक लिखी है। उनकी मान्यता है कि 'रत्न चिकित्सा' की सहायता से विश्वशक्ति का एक बडा भाग मनुष्य के दु ख-कष्ट की शान्ति के लिये काम में लाया जा सकेगा।

आपके सिद्धान्त की रूपरेखा सक्षेप में इस प्रकार है—सात विश्व ज्योतियो से ब्रह्माण्ड की रचना हुई है—सात मुख्य रत्न इस ज्योति के अक्षय भण्डार है। प्रत्येक रत्न को त्रिकोण काच (Prism) से परीक्षा करके उसके असली विश्व रग का ज्ञान हो जाता है। श्वेत पुखराज (moon-stone) अथवा सुनेला पुखराज (Topaz) देखने मे श्वेत तथा सुनैले हैं, परन्तु त्रिकोण काच से देखने पर उनमे आसमानी (Blue) रग झलकता है, अत वे आसमानी विश्वरग के भडार है। इसी प्रकार चुन्नी लाल का, मोती नारगी का, मू गा पीली का, पन्ना हरी का, हीरा नीली का और नीलम बेगनी विश्व-ज्योति के भडार है। अब उन्होने इसका सम्बन्ध रोलेड हन्ट की 'वर्णचिकित्सा' से जोड दिया है। उदाहरण के लिये वर्णचिकित्सा के अनुसार गले के सब रोगो—गलक्षत, स्वरभग, गलगड आदि में, आन्तो की सूजन से उत्पन्न ज्वर, गाठयुक्त प्लेग, चेचक, खसरा, हिस्टीरिया, अपस्मार, दिल की धडकन आदि रोगो में आसमानी रग की आवश्यकता पडती है, अतएव इन में पुखराज से निर्मित गोलियो का प्रयोग लाभदायक रहेगा आदि।

रत्न-औषधियो को तैयार करने की उनकी विधिविशेष जटिल नही है। जिस रत्न की गोलिया तय्यार करनी हों, उसका एक या आधी रत्ती भार का नग लेकर, शुद्ध अलकोहल में धोकर, एक औस की शीशी मे डाल दें। और शीशी मे एक ड्राम शुद्ध अल्कोहल डाल दे। अब इस शीशी को काग से कस कर बन्द करके एक अ धेरे कमरे

मे रख दे । सात दिन और सात रातों तक शीशी को रखा रहने दे । बाद मे वहा से निकालकर शीशी को कुछ देर तक हिलाये और उसमे एक औंस २० न० की दुग्ध शर्करा की गोलिया डाल दे और शीशी मे गोलियो को ऊपर-नीचे हिलाये । गोलिया रत्नज्योतिर्मय अल्कोहल को चूस जायेगी । अब गोलियो को निकाल कर सफेद कागज पर सुखालें और दूसरी सूखी साफ शीशी मे भर कर रख दे । इस पर 'चुन्नी या मणिक्य या अमुक रत्न की गोलिया' लिख दीजिये । रत्न को धोकर सम्भाल कर रख लीजिये यह फिर काम आयेगा ।

इसी प्रकार सातो रत्नो की गोलिया तय्यार कर लीजिये और और आगे निर्दिष्ट रोगो मे इन का प्रयोग कीजिये ।

आयुर्वेद और रत्न—प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रो ने अपने देर तक किये गये अनुभवो के आधार पर विविध रोगो मे रत्नो के प्रयोग की सलाह दी है। आयुर्वेद मे इनका प्रयोग (१) इनकी भस्म बनाकर और (२) पिष्टी बनाकर किया जाता है। प्रत्येक रत्न भस्म अथवा पिष्टी के रूप मे प्रयुक्त किया जाना चाहिये । **परन्तु सावधान** ! भस्म बनाने की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है । किसी अत्यन्त विद्वान्, भस्म बनाने की कला मे प्रवीण, वैद्य द्वारा बनायी गयी रत्न-भस्म का ही प्रयोग, चिकित्सापटु वैद्य की सलाह से करना चाहिये, अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि की सम्भावना है ।

यूनानी हकीमो का मत—यूनानी हकीम अग्नि द्वारा रत्नो की भस्म बनाना अच्छा नही मानते । उनका कहना है कि इस प्रकार तो रत्न एक प्रकार का चूना ही बन जाता है, अतएव उसमे रत्न के सारे गुण नही आते । वे रत्नो की पिष्टी (अत्यन्त सूक्ष्म चूरा) बना कर काम मे लाते है । चरक और सुश्रुत मे भी प्रवाल, मुक्ता और शख आदि की पिष्टि (चूर्ण) के प्रयोग का विधान किया है । भस्मो

की अपेक्षा पिष्टियां ही अधिक लाभदायक प्रतीत होती है। कौन सा रत्न या उसकी भस्म या पिष्टी किस रोग में प्रयुक्त की जाती है—इसके लिये प्रत्येक रत्न के साथ ब्यौरा दिया गया है।

प्राचीन दिव्य गुण-विज्ञान मे विश्वास रखने वाले विद्वान् रत्नों की दिव्य एव औपधिरूपा शक्ति की व्याख्या इस ढग से भी करते है—प्राणियो और अप्राणियो—सभी में—इसीलिये रत्नो में भी चुम्बकीय शक्ति की धाराये विद्यमान है—इनसे निकली चुम्बकीय शक्ति-तरगे चारो ओर फैलकर परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करती है। इस प्राकर रत्नो का शुभ-अशुभ प्रभाव मनुष्य के शरीर तथा मन दोनो पर पडता है। इसीलिये रत्नो की सहायता से भविष्य वाणिया की जा सकती हैं—जापान का प्रत्येक गृहस्थ अपने पवित्र गृह मे बिल्लौर (Pure Rock-crystal) का बना एक गोला रखता है। कहते है कि इस पर ध्यान लगाने वाले व्यक्ति की अभिलाषाओ को सुनकर वह पत्थर उत्तर देता है और ध्यान लगाने वाले की आत्मा उस उत्तर को समझ लेती है। यूनानियो का विश्वास था कि रत्नोपल अथवा दूधिया पत्थर का स्वामी यदि निस्वार्थ भाव से इस का प्रयोग करे तो उसको भविष्य दर्शन की शक्ति प्राप्त हो जाती है—स्वार्थ भावना से प्रयोग करने पर रत्नोपल स्वामी का अनिष्ट करता है। अनेक रत्न रोग नष्ट करने की शक्ति रखते हैं, कई रत्न व्यक्ति को बुद्धिमाना तथा महात्माओं का कृपापात्र बना देते है। कई रत्नो के धारण से बुद्धि बढती है, शक्ति सामर्थ्य आती है और साहस बढता है। कई विपदाओ तथा भयकर दुर्घटनाओ से रक्षा करते है।

परन्तु ज्योतिष के अनुसार किस रत्न को किस समय तथा किस प्रकार धारण करना चाहिये, इस सम्बन्ध मे एक विशेष लेख इसी पुस्तक के दूसरे खण्ड में प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् श्री जगन्नाथ

भसीन महोदय का लिखा दिया गया है। इसको ध्यान से पढ़िये। उससे स्पष्ट है कि **योग्य ज्योतिषी की सम्मति के अनुसार उचित रत्न का धारण करना ही ठीक है।**

भौतिक गुण

२

रत्नो की उत्पत्ति के विषय में पुराण तथा आधुनिक विज्ञान के मत : पृथ्वी पर मिलने का स्थान : विभिन्न राष्ट्रो मे कहाँ-कहाँ ? रत्नो के आकार : रत्नो के भौतिक-गुण कठोरता, आपेक्षिकघनत्व, चिराव और भंग।

रत्नखनिजो की उत्पति—पुराणो मे रत्न-खनिजो की उत्पत्ति के विषय मे अनेक प्रकार की कथाएँ कही गयी हैं। एक दन्त-कथा के अनुसार बल-नाम के एक अत्यन्त बलवान् दानव के शरीर के विविध अगो से रत्न बने; हड्डियो से हीरे, दान्तो से मोती, रक्त से माणिक्य, पित्त से मरकतमणि, आँखो से इन्द्रनील, रस से वैडूर्य, मज्जा से कर्केतन, नखो से लहसनिया, मेद से स्फटिक, मास से मूगा, चर्म से पुखराज, शुक्र से भीष्म नामक रत्न बने। परन्तु प्रतीत होता है कि रत्नो की उत्पत्ति का यह वर्णन भिन्न-भिन्न प्रकार से इन विविध रत्नो की विशेषताओ का लक्षक प्रतीक वर्णन मात्र है। हीरा देवताओ से भी अधिक महाबली दैत्य की हड्डियो की कठोरता का प्रतीक है सचमुच ही हीरे से अधिक कठोर पदार्थ अभी तक नही मिला है। मोती की प्राच्य चमक सुन्दर दातो की विशेषता है, पन्ना का हरापन पित्त के पीतिमायुक्त हरेपन से मिलता है। इन्द्रनील की चमक आँखो की चमक के सदृश है।

इत्यादि। जहाँ यह कथा दी गयी है, वही यह भी कह दिया है कि "**केचिद् भुवः स्वभावाद् वैचित्र्यं प्राहु रुपलानाम्।**" अर्थात् कुछ लोग कहते है कि पृथ्वी के गर्भ मे पत्थर पडे-पडे पृथ्वी के स्वभाव से कई अद्भुत् विशेषताएँ धारण कर के 'रत्न' कहलाने लगते हैं। निश्चय ही रत्नों की उत्पत्ति एव रचना का यही सिद्धान्त आज कल विज्ञान-सम्मत है। पृथ्वी के गर्भ में पडे-पडे उपल (पत्थर) भीषण ताप के प्रभाव से, अग्नि के प्रभाव से विचित्र-विचित्र गुण वाले बन जाते हैं और रत्न कहलाते है। हमारे शास्त्रो ने पृथ्वी को 'रत्न गर्भा' हिमालय को 'रत्नगिरि' और समुद्र को 'रत्नाकर' बताया है। हिमालय से मिलने वाले रत्न तो पृथ्वी के गर्भ से ही मिलते है, परन्तु मोती और मूंगा आदि जैविक रत्नो की खान महासमुद्र ही है। इसलिये महासमुद्र को 'रत्नाकर' कहा है।

वैज्ञानिको ने हीरा, माणिक्य, नीलम आदि महारत्नों का विश्लेषण कर के यह पता लगाया कि इसमें कौन-कोन से तत्त्व किस किस अनुपात मे विद्यमान है और फिर उन्हे उसी अनुपात में लेकर भिन्न-भिन्न प्रकार से ऊचा ताप देकर जोडने का यत्न किया और इस प्रकार प्राकृतिक रत्नो जैसे ही गुणों वाले सश्लिष्ट रत्नों की रचना कर ली है। यह तथ्य भी इस बात का पक्का प्रमाण है कि रत्नो के निर्माण मे ताप, ऊर्जा अथवा अग्नि का विशेष भाग है—शायद इसीलिये ऋग्वेद के पहले ही मत्र मे 'अग्नि' को 'रत्नधातम्' कहा है। जैसा कि हम पहले भी लिख चुके है, सच्चाई यह है कि कोई भी पदार्थ, यहाँ तक कि मानव काम न और आत्मा भी, ताप या तप की भट्टी में तप कर ही 'रत्न' बनता है।

रत्न कहां मिलते है—रत्न या तो अपने उत्पत्तिस्थान मे मिलते है, अर्थात् उसी स्थान पर जहाँ कि पहले-पहल अनेक प्रकार की रासायनिक क्रियाओं से उनकी रचना हुई हो। अपनी जनकशिला मे प्राप्त होने वाले रत्न है—बेरिल तथा टूर्मलीनसमूह के रत्न।

प्राय ऐसा होता है कि मौसम की क्रिया के द्वारा रत्न अपनी जनक शिला से अलग हो जाते है और पानी उन्हे बहाकर दूर ले जाता है। नदी-नालो मे निरन्तर लुढकते रहने के कारण ये रत्न-पत्थर घिस कर गोल हो जाते है। पानी का वेग घटने पर भारी पत्थर आगे नही बढते परन्तु हलके आगे बढ जाते हैं। दूसरे पत्थरो से अलग होकर रत्नो वाले पत्थर धीरे-धीरे रेत तथा ककड मे बिखर जाते हैं—मानो पानी से धुलकर एक जगह बैठ जाते हैं। हीरे, लाल, नीलम आदि रत्न अधिकतर इसी रूप मे पाये जाते है। इस पिछली दशा मे मिलने वाले रत्नो को निकाल लेना काफी सुगम होता है। इन को निकालने मे, उनके टूटने का डर बिलकुल नही रहता। इस दशा मे मिलने वाले रत्न ऊँचे दर्जे के इस कारण भी होते हैं कि बहाव के समय उन पर लगे निरर्थक खनिज टूट कर अलग हो जाते हैं।

भूगोल के विभिन्न देश जहाँ रत्न मिलते है—रत्न, चूँकि पुरानी तथा कठोर चट्टानो मे मिलते है, इस कारण रत्न प्राय पर्वतीय प्रदेशो मे पाये जाते हैं। प्राचीन काल मे भूगोल के पूर्वीय प्रदेशो मे ही हीरे आदि रत्न पदार्थ निकाले जाते थे और वही से पश्चिमी देश और राष्ट्र इन्हे प्राप्त किया करते थे, इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि पश्चिमी राष्ट्र अच्छी किस्म के रत्नो को सदा 'प्राच्य' (Orient) कहा करते थे।

आजकल हीरो की प्राप्ति का मुख्य केन्द्र अफ्रीका है। मूल्यो की दृष्टि से ९० या ९५ प्रतिशत रत्नो का भाग अफ्रीका महाद्वीप से प्राप्त होता है। अफ्रीका महाद्वीप के निम्नलिखित स्थान रत्नो के अच्छे उत्पादक देश है—बेल्जियम कागो, घाना, दक्षिण अफ्रीका सघ, सियेरा लियोन। अफ्रीका महाद्वीप के अतिरिक्त ब्राज़ील (दक्षिणी अमरीका), स्याम, बर्मा, श्री लका, भारत, सयुक्तराष्ट्र

अमरीका, आस्ट्रेलिया, रूस आदि हैं।

इस पुस्तक में प्रत्येक रत्न के साथ ससार में उसकी उपलब्धि के स्थानो का उल्लेख कर दिया गया है।

रत्नों के आकार—अधिकतर रत्न रवे (crystal) के रूप में मिलते है। वह प्राकृतिक ठोस पदार्थ रवा कहलाता है कि जिसका एक नियत आकार हो, जिसकी सब सतहे समतल और चिकनी हो, और जिसकी वनावट भी एक नियत रूप की हो। रवे का वाहरी आकार, भीतरी आकार का ही एक दीखने वाला रूप होता है—प्राकृतिक तथा कृत्रिम खनिज में एक बडा भारी अन्तर यह होता है कि कृत्रिम खनिज की भीतरी वनावट किसी नियत प्रकार की नही होती, यह अपने छोटे रूप से बडे रूप मे नही आता, इसके भीतरी अ श अव्यवस्थित रहते है, मानो कि एक का दूसरे से कोई वास्ता ही न हो। प्राकृतिक रवा, उसी किस्म के और उसी आकृति के छोटे-छोटे रवो की उसी आकृति में एक समष्टि होता है। रवे की यह प्राकृतिक आकृति बहुत महत्वपूर्ण है, कारण कि रवे की बहुत सी भौतिक विनेषताएँ इस के अनुसार होती है। रवे के रूप में पाये जाने वाले पत्थर, भले ही वे ससार के किसी भी कोने मे क्यो न पाये जाये, सदा उसी आकृति मे पाये जाते है। पन्ना भले ही वह दक्षिणी अमरीका में मिला हो अथवा मिश्र मे, पट्कोणीय क्रिस्टल के रूप में मिलता है।

आकृति की दृष्टि से क्रिस्टल छ प्रकार माने जाते है—

(१) घनीय अर्थात् जिनकी लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई तीनो ही आयाम एक समान हो। इस आकृति में मिलने वाले रत्न, हीरा कटकिज (स्पाइनल) तथा तामडा (गार्नेट) समूह के रत्न है। इस आकृति का नाम 'त्रिसमलवाक्ष' भी है।

(२) चतुष्कोणीय अथवा द्विसमलबाक्ष क्रिस्टल। ये क्रिस्टल आमतौर पर प्रिज्म या त्रिभुज आकार के होते है। इसमें गोमेद

का स्थान मुख्य है ।

(३) षट्कोणीय अथवा षड्भुजीय क्रिस्टल । इस समूह मे वैरुज, कुरुन्दम, स्फटिक तथा टूर्मलीन (शोभामणि) समूह के क्रिस्टल हैं । हरित नीलमणि (एक्वामैरीन) बैरुज समूह का रत्न है और लाल तथा नीलम भी वैरुज समूह के रत्न है—इन सव की आकृति षट्कोणीय ही है ।

(४) विषमलबाक्ष (Rhombic) क्रिस्टल । इस समूह मे पैरिडौट और काइसोवैरिल समूह के रत्न आते हैं ।

(५) एकनताक्ष (monoclinic) क्रिस्टल । इस समूह मे चन्द्रकान्तमणि तथा स्पोड्यूमीन वर्ग के रत्न आते है ।

(६) त्रिनताक्ष (Triclinic) क्रिस्टल । इस समूह मे अमेज़नाइट तथा सूर्यकान्त मणि वर्ग के रत्नो की गणना है ।

क्रिस्टल समूहो की जानकारी रत्न-परीक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, क्योकि रत्न-परीक्षा मे रत्नो की जिन विशेषताओ को जाच का आधार बनाया जाता है, वे उस पदार्थ के रवा बनने के ढग पर निर्भर करती है । रत्न पदार्थ जब अभी अनकटा और बिन-घडा होता है, तब भी क्रिस्टल रूप को देखकर उसकी जानकारी की जा सकती है ।

रत्नो के भौतिक गुण—(क) कठोरता'—यह तो सभी जानते हैं कि रत्न रूप मे प्राय वही खनिज रवे काम मे आते है जो कठोर होते है , कारण स्पष्ट है कि वे पहनने से कम घिसते हैं । कठोरता का अभिप्राय वह गुण है जो अपने कणो को अलग-अलग करते समय रुकावट पैदा करता है । इस गुण की माप एक से दूसरे रत्न के मुकावले मे ही का जा सकती है अर्थात् यह देखा जा सकता है कि कौन सा रत्न किस से अधिक कठोर है । इस प्रकार प्रत्येक रत्न को कठोरता के एक क्रम से रखा जा सकता है । वैज्ञानिको ने इसको बताने के लिये 'मोह क्रम' नाम से एक क्रम

निश्चित किया हुआ है। यह इस प्रकार है—

१. टैल्क (Talc)	४ फ्लोर स्पार	७ स्फटिक
२ जिप्सम	५. ऐपेटाइट	८ पुखराज
३ कैल्साइट	६ फैल्स्पार	९ कुरुदम (लाल व नीलम)
१० हीरा		

कठोरता की यह कोई नाप नही है केवल मात्र, क्रम ही है—टैल्क का क्रम १ है और हीरे का १० है; परन्तु इसका यह अभिप्राय नही है कि हीरा टैल्क से दस गुना कठोर है। हीरा वस्तुत तो टैल्क से कई लाख गुना कठोर होता है। अ गुली के नाखून की कठोरता २॥, ताम्बे के सिक्के की ३, चाकू की ५॥, फौलाद की रेती की ६, ७ है।

जिस खनिज की कठोरता मालूम करनी हो, उस पर ज्ञात माप क्रम के खनिज से खरौच डाल कर देखना चाहिये; यदि वह खरौच डाल दे तो जाच किया जाने वाला खनिज उससे कम कठोर होगा।

यह भी सम्भव है कि भिन्न-भिन्न स्थानो के खनिज कुछ कम या अधिक कठोर हो। जैसे कि हीरा। और यह भी सम्भव है कि एक ही रत्न खंड की एक सतह उसकी दूसरो सतह की अपेक्षा कुछ कम या अधिक कठोर हो।

कठोरता जहा रत्न को टिकाऊ बनाती है, वहा उस को रगड़ कर चमकाने मे भी सहायक रहती है। जो खनिज जितना अधिक कठोर होगा, उस पर पालिश भी उतनी अधिक की जा सकेगी।

आपेक्षिक घनत्व (गुरुत्व या दडक)—जिस प्रकार एक रत्न दूसरे की अपेक्षा अधिक या कम कठोर होता है, ऐसे ही कोई रत्न अधिक भारी लगता है तो दूसरा उसके मुकाबले मे कम भारी लगता है। यह मुकाबला एक बराबर समाई के भिन्न-भिन्न रत्न-

खण्डो को लेकर तथा उन्हे तोलकर किया जा सकता है। वैज्ञानिकों ने सब पदार्थों का मुकाबला पानी से किया है और एक बराबर समाई (आयतन) के पानी से जो रत्न जितने गुना भारी होता है वह अ क उस के आपेक्षिक घनत्व की माप माना गया है। कुछ विशेप रत्नो तथा रत्न सम्बन्धी पदार्थों के आपेक्षिक गुरुत्व के अ क इस प्रकार हैं—

नाम रत्न	आ घ	नाम रत्न	आ घ
रत्नोपल	२ १५	हीरा	३ ५२
चन्द्र कान्त	२ ५७	पुखराज	३ ५३
स्फटिक	२ ६६	स्पाइनेल	३ ६०
बैरु ज	२ ७४	तामडा (हेसोनाइट)	३ ६१
फीरोजा	२ ८२	कुरुन्दम	४ ०३
शोभामणि	३ १०	तामडा	४ ०७
पेरिडोट	३ ४०	गोमेद	४ २०

एक अद्‌भुत बात यह है कि प्राचीन शास्त्रो मे उस हीरे को कि जो पानी मे तैर सके (वारितरम्) श्रेष्ठ माना है। पानी से ३ ५२ गुना हीरा पानी मे तैर नही सकता— प्रतीत होता है अधिकतर प्रसिद्ध महारत्नो मे सबसे कम आपेक्षिक घनत्व (ऊपर दी हुई सूची देखिये) होने के कारण यह अतिशयोक्ति की गयी हो, हीरा दूसरे प्रसिद्ध रत्नो से तो, हाथ मे लेने पर हलका लगना ही चाहिये , पर यह भी कह दिया कि इतना हलका लगे कि मानो पानी मे तैरेगा।

रत्नो की परीक्षा के लिये उनके आपेक्षित घनत्व की जानकारी एक बहुत महत्त्वपूर्ण परीक्षा है। इसका कारण यह है कि प्रमुख रत्नो का अपेक्षिक गुरुत्व प्राय भिन्न-भिन्न और प्राय एक निश्चित अक ही होता है।

रत्नो के **आपेक्षिक घनत्व को आँकने** के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की तूलाओं से काम लिया जाता है। परन्तु एक विधि वह भी है कि जिससे शीघ्रता से ही इसकी माप की जा सकती है। इस विधि में ज्ञात घनत्ववाला कोई भारी द्रव पदार्थ लेकर उनमें उस रत्न-खंड को डाल दिया जाता है कि जिसका आपेक्षिक घनत्व जानना होता है। लिये हुए भारी द्रव पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व ज्ञात होता है; अब यदि उसमें डालने पर अज्ञात आपेक्षिक घनत्व का रत्न तैरता रहता है तब तो अज्ञात रत्न का आपेक्षिक गुरुत्व उस से कम होगा; यदि इसका ५/६ भाग द्रव की सतह से नीचे होगा तो रत्न का अपेक्षिक घनत्व द्रव के आपेक्षिक घनत्व का भाग ५/६ होगा।

यदि रत्न द्रव में जल्दी-जल्दी ऐसे डूब जाता है जैसे कि पानी मे शिला डूबती है तब उसका आ घ द्रव से पर्याप्त अधिक होगा। और यदि रत्न **धीरे-धीरे** डूबता है तो उसका आ घ द्रव से थोडा ही अधिक होगा।

'मिथाइलीन आयोडाइड' या 'ब्रोमोफोर्म' नाम के द्रव का इसके लिये प्रयोग किया जाता है। मिथाइलीन आयोडाइड का आ घ. ३ २२ है; और ब्रोमोफार्म का २ ८९ है। इनको क्रमश: ३.१ और २ ६७ घनत्व तक हलका भी किया जा सकता है। ३ १ आ घ के मिथाइलीन आयोडाइड मे टूर्मैलीन न डूबेगा, न तैरेगा—इसका भी आ घ ३ १ है। २ ६७ आ घ के ब्रोमोफार्म में बैरिल धीरे-धीरे डूबता है और बिल्लोर सिर्फ तैरता ही है। पुखराज और टूर्मैलीन मे पहचान करने के लिये विशुद्ध मिथाइलीन आयोडाइड का प्रयोग किया जा सकता है। इसमे पुखराज (आ. गु ३ ५३) डूब जाता है और टूर्मैलीन (आ गु ३ ०६) तैरता है।

परन्तु सावधान—इन तथा दूसरे द्रवो का प्रयोग करते समय यह ध्यान रखिये द्रव हाथो अथवा कपडो पर न पडे और एक से दूसरे द्रव मे डालने से पूर्व रत्न और चिमटी को खूब साफ भी कर लेना चाहिये ।

चिराव (cleavage)—हीरा सबसे अधिक कठोर खनिज रत्न है । वैदिक तथा लौकिक साहित्य मे तो इसका 'वज्र' नाम इसकी कठोरता का प्रतीक है । इसकी कठोरता का कारण यह बताया गया है कि इसके तत्त्व कार्बन के परमाणु आपस में बहुत ही अधिक सटे रहते है ।

परन्तु फिर भी यह आसानी से चिर जाता है । इसके परमाणु तो आपस मे खूब सटे रहते हैं परन्तु परमाणुओ से बनी सतहे आपस मे शिथिलता से जुडी हुई होती है । हीरे आदि रत्न अपनी सतहो के समान्तर दिशाओ मे ऐसी ही सरलता से चिर जाती है जैसे कि लकडी अपने रेशे के समान्तर दिशा मे असानी से चिरती है । हीरा अपने अष्ट पहलू पहल के समान्तर चिरता है ।

परन्तु चिराव की यह सम्भावना बहुत थोडे रत्नो मे रहती है । चिरावस्थल की सूचक **चटक**, जिस रत्न मे हो तो उससे उस रत्न को पहचान करने मे सरलता होती है । सरलता से चिरने वाले रत्न ये है—प्रसिद्ध रत्नो मे से हीरा और पुखराज सरलता से चिरते है । बैरूज, विडालाक्ष और तामडा आसानी से नही चिरते । चिराव की चटक रत्न को काटने वाले के लिये विशेष महत्त्वपूर्ण रहती है ।

भंग—चिराव की तुलना मे किसी रत्न का **भंग** तव कहलाता है जव कि वह इस प्रकार टूटे जैसे कि लकडी के रेशो को तोडकर उनको आरपार काटा जाता है । रत्नो का भग कई आकारों में

होता है। निम्नलिखित बाते ध्यान मे रखिये—(१) अधिक रत्नों का भग टेढा मेढा और सीपी के आकार का होता है—ठीक ऐसा ही जैसा कि काच का भग होता है।

(२) जहा से रत्न टूटता है, वहा भी तल चमकदार चिकना ही हो सकता है परन्तु चिराव में जिस प्रकार चिराव एक अकेले तलवाला और नियमित होता है—भग वैसा नही होता; भग मे अनेक ऊँचे-नीचे तल वन जाते है।

भंग के प्रकार को देखकर प्राय भिन्न-भिन्न रत्नों में पहचान नही की जा सकती।

रत्न कहलाने के आधार

२

रत्नो की प्रकाशीय विशेताएँ—अनेक प्रकार की सतही चमकें; पारदर्शिता; रंग; रंगों के छीटे; प्रकाश का वर्तन तथा वर्तनाङ्क; दुहरा-तिहरा वर्तन; वर्णवैचित्र्य; अपकिरणन; रंग-दीप्तिः तारकता; बिल्ली की आँख जैसे रत्न; अंधेरे में चमकना।

रत्नों के सौन्दर्य का आधार—रत्नों के उपयोग, उनके महत्त्व, प्रभाव-शक्तियों तथा भौतिक रूप तथा गुणो के विषय में सामान्य विचार करने के वाद अब इस वात की ओर पाठक का ध्यान खीचना आवश्यक समझते है कि हम सही रत्न का सही उपयोग तभी कर सकेंगे कि जब कि रत्नो की आम व खास विशेपताओ को जान लेंगे। खास-खास रत्न की खास-खास विशेपताओ

का वर्णन तो हम इस पुस्तक के तीसरे भाग मे करेंगे। यहा पहले हम यह बतलाने की कोशिश करेंगे कि हम किसी पदार्थविशेष को रत्न क्यो कहते है ? रत्न पदार्थो मे कुछ ऐसी सब मे पायी जाने वाली विशेषताएँ होती है कि हम बिना किसी खास कोशिश के ही उसको देखते ही 'रत्न' कह उठते है। हीरा, माणिक्य, नीलम, पन्ना, पुखराज, वैदूर्य आदि कहने को तो है सभी पत्थर ही, परन्तु इनकी कुछ सामान्य विशेषताएँ है जिनके कारण इनका विशेप नाम 'रत्न' अथवा रमणीय पडा और अग्रेजी मे इन पत्थरो को बहुमूल्य (Precious) पत्त्थर कहने लगे। **एक शब्द मे कहे तो इन सबकी साझली विशेषता का नाम है, सौन्दर्य अथवा लावण्य।** और फिर अकेला सौन्दर्य अथवा लावण्य ही पदार्थ को रोचक या रत्न नही बना देता। रत्न' कहलाने के लिये, लावण्य का अधिक से अधिक स्थिर बने रहना, टिके रहना भी आवश्यक है। इन दोनो के मेल से रत्न मे दिव्यपना भी आता है और रत्न के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। फिर 'रत्न' पदार्थो मे गिनती किये जाने वाले पत्त्थरो मे दो विशेषताएँ और भी गिनी जाती हैं— एक है उनका 'कम पाया जाना'। जो पदार्थ सरलता से आम तौर पर मिल जाते है। उनका भला मूल्य और आदर अधिक क्यो होने लगा ! फिर एक चौथी विशेषता है 'चलन अथवा फैशन' । १९२० से १९२९ तक युरोप मे एम्बर अथवा तृणमणि की खूब माग रही और अब तारे की भाति छ या बारह किरण छोडने वाले नीलम की माग बहुत है। अधिक महत्त्वपूर्ण रत्नो की माग समय के साथ की वदलती रहती है। अभिप्राय यह हुआ कि खनिज अथवा दूसरा वह पदार्थ जो अपने सौन्दर्य के कारण व्यक्ति का **आभूषण बन सके,** जिसका यह सौन्दर्य **पर्याप्त टिकाऊ** हो, जो आमतौर पर मनुष्य को **सुलभ** न हो—बहुत कम मिलता हो और जो देश मे **चलता** हो

वह पदार्थ 'रत्न' कहलाता है। प्रत्येक रत्नपदार्थ मे इन चारो विशेषताओ का होना आवश्यक है, परन्तु लावण्य अथवा सौन्दर्य का होना तो रत्न की मानो जान ही है। अपने सौन्दर्य के कारण मोती-सरीखे कुछ कम टिकाऊ, सुलभ और कभी-कभी चलन में न रहने वाले पदार्थ भी 'रत्न' ही कहलाते है।

सौन्दर्य क्या है? रत्न के आंगन में प्रकाश की किरणों का कौतुक ही तो!—इन रत्नो का सौन्दर्य यो तो अनेक बातो पर निर्भर है परन्तु उन सबको सक्षेप से कहे तो कह सकते है कि यह सौन्दर्य केवल मात्र प्रकाश की किरणो का एक कौतुक मात्र है। प्रकाश की किरणे रत्नो पर पडती है और फिर कुछ तो उनसे टकरा कर देखने वाले की आख पर लौट आती हैं, कुछ रत्न में घुस कर पार हो जाती है; कुछ घुस कर भी फिर वापस लौट आती हैं; प्रकाश की एक किरण सात रगो की किरणो से मिलकर बनी होती है—किसी रत्न के भीतर जा कर लौटती हुई प्रकाश की किरण सात रगो मे बँट जाती है—और फिर रत्न में से इन्द्रधनुष की-सी छवि निकलती दिखायी देती है—बस प्रकाश की किरणो का यह अद्भुत खेल ही है जो हमारा मनोरजन करता है; हमारा मन इसके कारण ही ऐसे पदार्थ के सौन्दर्य से मुग्ध हो जाता है और उसका उपासक बन जाता है। रत्नो की ये **प्रकाशीय विशेषताएं** कहलाती है। यहा हम पहले पहल इन विशेषताओं पर ही प्रकाश डालेगे। रत्नो की महत्वपूर्ण प्रकाशीय विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

१—**द्युति या चमक** (Lustre)—किसी भी वस्तु को देखते ही देखने वाले की दृष्टि में सबसे पहले उसका बाहरी रूपरंग आता है। रत्नों की सतह पर एक विशेष प्रकार की चमक अथवा द्युति होती है। रत्न अपने तल पर किस प्रकार के तथा कितने

प्रकाश को लौटाता है, रत्न की चमक मुख्यतया इन दो बातो पर निर्भर होती है। यह चमक कई प्रकार की है --(क) **ओज-द्युति** और **तेलिया** चमक; (ख) **धात्विक चमक** अर्थात् प्रतिदिन बरतने मे आने वाली धातुओ-पीतल, कासी, सोना, चादी आदि जैसी चमक, (ग) **मुक्ता-द्युति**—मोती की अपनी निराली चमक होती है, इस लिये जौहरियो ने इसका नाम मोती के नाम पर मुक्ता-चमक रखा है। इसी चमक का दूसरा नाम 'प्राच्य' (Orient) चमक भी है, (घ) **राल-द्युति**—राल सरीखी चमक का नाम राल-द्युति है और फिर है (ड) **रेशमी चमक**—रेशम की अपनी अलग चमक होती है। इनके अतिरिक्त **हीरक द्युति, काचर द्युति और मन्द द्युति** शब्दो पर भी ध्यान दीजिये। रत्नो में से हीरा ऐसा पदार्थ है, जो अपने भीतर गये हुए लगभग सारे प्रकाश को लौटा देता है—इसके कारण हीरा अत्यन्त उज्ज्वल दिखायी देता है, इसलिये इसकी अपनी एक विशेष चमक होती है, उसका नाम हीरक द्युति रखा गया है। काच अथवा स्फटिक जैसी दमक **काचर द्युति** कहलाती है।

रत्नो को और अधिक बारीकी से पहचानने के लिये इन मे से प्रत्येक चमक की चार-चार कोटिया अथवा दर्जे हैं—जो कम या अधिक चमक के हिसाब से है —

(१) प्रथम अथवा सर्वोच्च कोटि की चमक वह है कि जो श्वेत प्रकाश को छोडती है —इस प्रकार की चमक दूर से खूब प्रज्वलित तथा झलकती दिखायी देती है और इसकी सतह पर चमकती शक्ले अथवा परछाइयाँ दिखायी देती है। ऐसी प्रथम कोटि की चमक हीरे की होती है। 'आयुर्वेद प्रकाश' में हीरे को 'अतिभा-सुर' अर्थात् अत्यन्त तेजस्वी बताया है।

(२) दूसरे दर्जे की चमक को अग्रेजी मे 'शाइनिंग' कहते है;

यह चमक प्रथम कोटि की चमक अर्थात् 'अतिभासुरता' से कुछ कम होती है। इसकी सतह पर परछाइयाँ धुँधली-धुँधली दिखायी देती है।

(३) तीसरी कोटि की चमक को अंग्रेजी में 'ग्लिसनिग' कहा है—ऐसे रत्न की सतह से लौट कर आया प्रकाश इतना मध्यम होता है कि एक हाथ की दूरी पर भी स्पष्ट नही दिखायी देता। और इसकी सतह पर किसी प्रकार की परछाई नही दिखायी देती।

(४) बहुत सूक्ष्म सी चमक चौथी कोटि की चमक है। अंग्रेजी में इसको 'ग्लिमरिग' नाम दिया गया है। ऐसी चमक वाली वस्तु को दिन के समय आँख के समीप लाकर देखने से कुछ थोडे से चमकते बिन्दु ही दिखायी देते है।

हमने रत्नो की इन तरह-तरह की सतही चमको की चर्चा इतने विस्तार से इस प्रयोजन से की है कि खनिजो, विशेपतया रत्नो, को पहचान करने का पहला और ऐसा साधन जो सबको सुलभ हो, आदमी की अपनी दृष्टि ही है। निरन्तर अभ्यास से जोहरी अलग-अलग रत्नों के बारीक अन्तरो को पहचानने के अभ्यासी हो जाते है।

वस तो चतुर जौहरी अपनी पैनी दृष्टि से पहले पहल रत्न की दमक को देखता है और उसको देखकर न केवल 'रत्न' की जाति, उसके नाम-धाम का ही अनुमान कर लेता है, अपितु उसके मूल्य को भी कुछ सीमा तक आक लेता है।

पारदर्शिता—यह वह गुण है कि जिसके कारण प्रकाश पदार्थ में से आर-पार हो सकता है। किसी पदार्थ मे से प्रकाश की किरणे जितनी मात्रा में तथा जितनी सरलता से आर-पार आ सकेंगी, वह

पदार्थ उतना ही अधिक पारदर्शक होता है। कुछ पदार्थ **पारभासी** होते है—इनमे प्रकाश कुछ कम मात्रा मे तथा कठिनता से आर-पार होता है। जेड पारभासक रत्न है। **अपारदर्शक** पदार्थ मे से प्रकाश बिल्कुल नही गुजरता। धात्विक चमक वाले रत्न अपारदर्शक होते है। रत्नो मे से अधिकाश पारदर्शक है। विशेषतया बहुमूल्य रत्न। हमारे प्राचीन ग्रन्थो मे महारत्नो की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी **स्वच्छता** बतायी है। रत्न की स्वच्छता उस की पारदर्शकता ही है। पारदर्शक रत्न को आख के सामने रखिये, यह भले ही रगीन नीलम, माणिक्य, पन्ना या पुखराज ही क्यो न हो, ऐसा प्रतीत होगा कि मानो इसमे कोई दूसरा पदार्थ है ही नही।

रंग—रत्नो को सुन्दर बनाने मे रग का अपना निराला महत्त्व है। कई रत्नो का आकर्षण तो सर्वथा उनके रगो पर ही निर्भर रहता है। फीरोजा का सारा आकर्षण उसका रग ही है।

मोटे तौर पर तो रग उन सात तरह की किरणो का नाम है जिनसे मिलकर सूर्य की श्वेत किरण बनती है। पाठको ने वर्षाऋतु मे इन्द्र धनुष बनता देखा होगा। इसमे सात वर्ण होते है—लाल, नारगी, पीला, हरा, आसमानी, नीला और बैगनी। असल मे सूर्य की श्वेत किरण इन्ही सात वर्णों से मिलकर बनी हुई है। फिर प्रत्येक रग के तीन भाग माने गये है—रग का मुख्य भाग तो ये सात वर्ण है; ये अलग-अलग अथवा एक दूसरे से मिलकर नाना प्रकार के वर्ण बन जाते है। रग का दूसरा घटक है आराग अथवा झाई या कम-अधिक चमक; हर एक वर्ण की चमक भी कम या अधिक हो सकती है। चमक की गहराई, मध्यमपना और हलकापन रत्न के आकार और मोटाई के अनुसार बदलता रहता है। एक ही प्रकार रत्न-खण्डो के वर्णों की चमक उनकी मोटाई के अनुसार होगी—जो रत्नखण्ड पतला होगा उसके वर्ण की झाई पतली या

कम गहरी होगी ।

परन्तु रग का मुख्यभाग उसका वर्ण है और वर्ण आता है सूर्य से । सूर्य की किरण मे, जैसा कि ऊपर बता आये है, छ वर्ण है । श्वेत प्रकाश की किरण जब किसी पारदर्शक वस्तु से टकराती है, तब उसका कुछ अश तो उसकी सतह से ही लौट जाता है, परन्तु उसका अधिकाश पारदर्शक पदार्थ में से गुजरता है । पारदर्शक पदार्थ किरण के कुछ अ श को सोख लेता है, शेष उससे बाहर निकल जाता है इस प्रकार सातवर्णो की वनी हुई किरणमाला मे से जो एक या अधिक वर्णो की मिली जुली किरण बाहर आती है वही वर्ण उस पदार्थ का हमें दिखायी देता है । भिन्न-भिन्न रत्न किन्ही विशेप वर्णो की किरणो को सोखते है—मानो उन खास-खास वर्णोकी किरणो को चुन लेने की उनकी आदत ही हो । यह भी एक अद्भुत सयोग ही समझिये कि किसी-किसी रत्नपाषाण केभीतर भिन्न-भिन्न दिशाओ में भिन्न-भिन्न वर्णो की किरणो का विलय होता है और इस कारण एक ही रत्न को भिन्न-भिन्न दिशाओ से देखने पर उसके भिन्न-भिन्न रग दिखायी देते है । टूर्मलीन (शोभामणि) के एक ही मणिभ को दो भिन्न-भिन्न दिशाओ से देखिये, वह प्रायः लाल और हरा' दो रग का दिखायी देगा । शोभामणि मे यह गुण वहुत ही तीव मात्रा मे पाया जाता है और इस के कारण वह अत्यन्त आकर्पक लगता है ।

छीटें भी दिखायी देते है—कई रत्नो मे वर्णो की किरणो का विलय एक समान नही होता, या यो कहिये कि रत्न मे वर्ण को विलय करने वाला तत्त्व अथवा वर्णक पदार्थ समान रूप से नही मिला होता, इसका परिणाम यह होता है कि उसमे रग के छीटे या धब्बे दिखायी देते है । ऐमीथीस्ट अथवा नीलम मे प्राय. ऐसा देखने मे आता है ।

प्रकाश का वर्तन (मुडकर चलना)—प्रकाश की किरण की एक

विशेषता यह भी है कि वह जब किसी घने पदार्थ में से पतले अथवा विरल पदार्थ में और विरल पदार्थ मे से घने पदार्थ मे प्रवेश करती है तो उस का रास्ता सीधा नही रहता और चाल बदल जाती है। किसी रत्न के भीतर से निकलने वाली किरण अपने रास्ते से मुड कर हमारी आख मे आती है। यह उसका '**वर्तन**' कहलाता है। हर एक पदार्थ मे वर्तन की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है--इसकी माप हवा मे उसके वर्तन के अनुपात मे की जाती है और यह उस रत्न का **वर्तनाँक** कहलाता है। चूँकि प्रत्येक रत्न का वर्तनाक अलग-अलग है, इसलिये, रत्न के वर्तनाक को जानकर हम रत्न की निश्चित पहचान कर सकते है। किसी रत्न का वर्तनाक कैसे निकाला जाता है--इसकी व्याख्या तो हम यस प्रारभिक पुस्तक मे नही कर सकेंगे रन्तु यह निश्चित है कि रत्न का वर्तनाक उसकी पहचान का एक प्रमुख साधन है।

अद्भुत देन—दुहरा—तिहरा वर्तन--रत्न मे से गुजरती किरण का वर्तन जहा उसकी पहचान मे मदद करता है--वहा यह एक दूसरे प्रकार से भी प्रकृति की अनूठी देन है। प्रथम तो यह वर्तन जब एक चरम सीमा तक पहुँच जाता है तो किरण मुडती-मुडती जिस ओर से आयी थी, उसी ओर लौटने लगती है। हीरे का वर्तनाक सबसे ऊँचा होता है, इसलिये इसमे किरण मुडते-मुडते शीघ्र ही इतनी मुड जाती है कि वापस लौट पडती है--एक प्रकार से हीरे की सतह पर पडा लगभग सारा ही प्रकाश उसके भीतर घुस कर भी फिर वापस लौट पडता है और यह **अनुपम छटा छा देता है**। कम वर्तनाक वाले रत्नो मे प्रविष्ट प्रकाश का अधिकाश उसमे से पार हो जाता है। हीरे आदि को काटकर भी रत्नो को ऐसा बना दिया जाता है कि उनमे से,प्रकाश का पूर्ण परावर्तन (लौटना) होता रहता है और इस प्रकार उनकी दमक खूब बढ जाती है।

रवे या क्रिस्टलो की बनावट छ प्रकार की है--इनमे से

हीरा घनाकृति है। घन समूह के तथा रवा-रहित रत्नों या खनिजों में से जब किरण गुजरती है तो वह एक ही रश्मि बनी हुई आगे बढती है—परन्तु शेष पाच प्रकार के रवों में से गुजरने वाली तिरछी रश्मि न केवल वर्तित ही होती (मुडती) है अपितु दो या तीन रश्मियो में भी बट जाती है। एक की दो बनी हुई रश्मिया कम-अधिक, असमान, चाल से आगे बढती है। 'कैल्साइट' में यह '**दुहरा-वर्तन**' इतना साफ होता है कि खाली आख से भी दिखायी देता है। आपने देखा होगा कि किसी-किसी काच के टुकड़े को पुस्तक के छपे हुए पृष्ठ पर रख कर देखने से **अक्षर दुहरे** दिखायी देते हैं। हीरे तथा रवा रहित विक्रान्त (गार्नेट) तथा दूधिया पत्थर मे–जिनमे इकहरा वर्तन होता है, दुहरे अक्षर नही दिखायी देते।

एक **और कौतुक भी**—इसी वर्तन गुण के कारण दिखायी देता है। दुहरे वर्तन में एक किरण की दो किरणे वन जाती है। जिन पदार्थो में ये साथ-साथ चलती है, उनमे तो उपर्युक्त रीति से दुहरे अक्षर दिखायी देते ही है—फिर किसी-किसी रत्न मे इन किरणों का रत्न में विलयन भीतर ही खपजाना–असमान मात्राओ मे होता है—उनमें ये किरणे दो अलग-अलग रगों की दिखायी देती है। माणिक्य तथा नीलम को एक दिशा से देखने पर कोई रग दीखता है, उसी को दूसरी ओर से देखने पर उससे भिन्न दीखता है। रत्नों की यह विशेषता **द्विवर्णिता** (दुरगापन) कहलाता है। इन रत्नो के सौन्दर्य का एक वडा कारण ये दुहरे रंग और इनका मिश्रण ही है। पन्ने मे भी दो रग साफ-साफ दिखायी देते है। एलैक्जैंड्राइट में तो तीन रग—हरा, नारगी और लाल दिखायी देते हैं।

किरण का अपकिरणन (या बिखराव) इन्द्रधनुष पाठको ने देखा ही होगा; साबुन के बुलबुले और सीपियो को भी खास तरह से चमकता देखा होगा। होता यह है कि प्रकाश की रश्मि कुछ

पदार्थो मे से निकलते समय जब मुडती है, (वर्तित होती है), तब उससे सात वर्णो की किरणे एक दूसरे से आगे पीछे रह जाती है—उनकी चाल एक सी नही रहती; लाल किरण सबसे कम मुडती है और बैगनी सब से अधिक। परिणाम यह होता है कि बाहर देखने वाले की आख मे सातो रग एक पट्टी के रूप मे दिखायी देते है। **यह इन्द्रधनुषी** चमक या **रंगदीप्ति** (ir descence) कहलाती है। ऐसे पदार्थो का तल समतल होते हुए भी उसमे बहुत ही सूक्ष्म ऊँचा-नीचापन विषमताएँ होती है और इसप्रकार प्रकाश सात रगो मे बट जाता है।

हीरे से किरण का अपकिरणन भी बहुत अधिक मात्रा मे होता है, काच की अपेक्षा लगभग तिगुना। इसका परिणाम यह होता है कि हीरे को एक ओर घुमाने से पीला, तो उसी ओर कुछ और अधिक घुमाने पर लाल या आसमानी रग की चमक दिखायी देती है। भारतीय हीरो मे जो 'ज्वाला (fire) सी फूटती दिखायी देती है, उसका भी कारण भी हीरे की यह विशेषता ही है। स्फटिक या काच मे यह-विरगी दमक इतनी नही दिखायी देगी।

तारकता अथवा तारे की किरणो के समान फूट कर निकलती किरणें दिखायी देना—लाल और नीलम को जब काटकर ऐसा बना दिया जाता है कि उस का ऊपर का सिरा उन्नतोदर (बाहर की ओर गोल) हो, पीठ पर चपटा हो और पहल न बनाये गये हो और तब ऊपर से उसमे झाका जाये तो उस मे छ तथा बारह किरणे ऐसे फूटती दिखायी देती है कि मानो वह कोई तारा हो। यह विशेषता उनकी **तारकता** कहलाती है। यह गुण लाल और नीलम मे विशेष रूप से पाया जाता है, इसीलिये इनको तारक लाल और तारक नीलम भी कहते है। ये पर्याप्त मँहगे होते है।

बिडालाक्षि-प्रभाव——शिखर पर उन्नतोदर बनाये कुछ रत्नों में ऊपर से झाँकने पर चमकीली रेखा ऐसी दिखायी देती है जैसी' बिल्ली की आंख में। इस विशेषता के कारण वह रत्न बिल्ली की आख जैसा दिखायी देता है। इस प्रभाव को बिडालाक्षि-प्रभाव (chatoyancy) कहते है। लहसनिया अथवा बिडालाक्ष अथवा 'साइमोफेन' अ धेरे में वैसे ही चमकता है जैसे कि बिल्ली की आखे।

संदीप्ति (luminescence)——कुछ रत्नों को सीधे-सूर्य के प्रकाश में अथवा परा बैंगनी किरणों को पैदा करने वाले पदार्थ के साथ रखा जाता है तो वे चमकने लगते है——यह गुण अ धेरे में रखने पर और भी अधिक दिखायी देता है। इस गुण को रत्न की **संदीप्ति** कहा जाता है। यह दो प्रकार की होती है——यदि यह सदीप्ति उत्तेजक पदार्थ के सम्पर्क के रहने तक ही रहे तब तो इसको फ्लोरेसेस (fluorescence) अथवा '**प्रतिदीप्ति**' कहते है। यदि उत्तेजक पदार्थ से सम्बन्ध तोड़ देने पर भी यह संदीप्ति वनी रहे तो उस को **स्फुरदीप्ति** (phosphorescence फॉस्फोरेसेन्स) कहते है। हीरा, लाल, रत्नोपल और तृणमणि में सदीप्ति काफी मात्रा में विद्यमान रहती है। हीरे को सूर्य किरणो में रखकर फिर अ धेरे में रखिये——तो वह चमकने लगता है। 'स्फुर दीप्ति' की यह विशेपता भाति-भांति के हीरो मे कम-अधिक होती है।

परन्तु रंग बड़ा धोखेबाज है! रगों के इस कौतुक को देखकर आप समझ गये होगे कि रत्नों का सौन्दर्य रगो पर निर्भर होते हुए भी रग प्राय आकस्मिक ही होते है। अधिकतर रत्नखनिज अपनी विशुद्ध अवस्था में वर्णहीन होते है। वर्णहीन कॉच को उसमें विविध धात्वीय ऑक्साइड डालकर चमकीले रंग वना लिये जाते है। कुछ रत्नों में अपने निजी रग भी अवश्य होते हैं—उदाहरण के लिये वैदूर्य, हरितमणि अथवा फिरोजा का रंग अपने आवश्यक

कटाई द्वारा रत्न का रग, चमक तथा दमक सब निखर जाते है। घटक तत्त्व ताम्बे के कारण होता है। तामडा (Granite) समूह के रत्नो के लाल, भूरे और हरे वर्ण उसके आवश्यक घटक तत्त्व के कारण होते हैं।

फिर अनेक रत्नो के साथ विशेष व्यवहार किये जाने पर उनके रग बदल भी जाते है। स्पष्ट है कि उनके ये रग उनमे किसी वर्णक की उपस्थिति के कारण नही होते। आसमान क्यो नीलम को मात देने वाले सुन्दर नीले रग का है ? किसी कुहरे वाले दिन सूर्य का रग माणिक्य के रग-सरीखा गहरा लाल क्यो हो जाता है ? निश्चय ही ये रग आसमान मे उपस्थित किसी रजक या वर्णक पदार्थ की उपस्थिति से नही उत्पन्न होते! वैज्ञानिको का मत है कि आसमान मे बहुत ऊँचाई पर विद्यमान धूल और जलवाष्प के सूक्ष्म कणो द्वारा सूर्य के प्रकाश को विविध किरणो के अपकिरणन द्वारा ये रग दिखायी देने लगते है। यही बात रत्नो के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है। **और भी देखिये,** बिल्लौर को जब तपाया जाता है तो उसका रग लुप्त हो जाता है और उस पर यदि रेडियम किरणें डाली जाय तो इसका रग फिर लौट आता है। रग विहीन बिल्लौर पर भारी दबाव डाल दिया जाय तो वह पीला हो जाता है और रेडियम की किरणो मे वह फिर नीला दिखायी देने लगता है।

ब्राजील का पीला पुखराज तपाने पर सुन्दर गुलाबी रग का हो जाता है। साइबेरिया के भूरे-से पीले पुखराज का रग सूर्य के प्रकाश मे सर्वथा जाता रहता है। नीलमणि को तपाने पर वह पीली हो जाती है और लोग इसको 'पुखराज' के नाम से बेचने लगते है।

ऐसा प्रतीत होता है कि **रंगो का यह सारा जादू** रत्न के सूक्ष्म कणो के परिमाण मे परिवर्तन होकर, प्रकाश की किरणो के उनके साथ किये गये कौतुक के कारण ही है।

काटें : कृत्रिम रंग : मनुष्यकृत रत्न

: ४

रत्नों के सोए हुए सौन्दर्य को जगाना . विविध काटें और रंग का निखार असली और नकली की पहचान; नवरत्न और उपरत्न ।

रत्नो का हमारा दिया हुआ यह सामान्य परिचय कुछ अधूरा ही लगेगा यदि साथ में दो अन्य कलाओं का भी उल्लेख न किया जाय। इनमें से एक तो है रत्नो के सोये हुए सौन्दर्य को जगाने की कला, अथवा इनको **काटना और रंगना**। दूसरी कला है **नकली रत्नों का निर्माण**। इन दोनो कलाओ का सक्षिप्त परिचय देकर हम इस प्रथम भाग को समाप्त करेगे और प्रत्येक रत्न का पूर्ण परिचय देने का यत्न करेगे।

रत्नों के सौन्दर्य को जगाना अथवा **रत्नों की काट और कृत्रिम रंजन**—आभूषणो में जडने के लिये प्राय सभी रत्नों को विशेष रीति से काटकर ही काम मे लाया जाता है, प्रकृति में वे जैसे मिलते है, वैसे ही उन्हे नही रहने दिया जाता। बात यह है कि कभी तो रत्न छोटे-छोटे ककर ही होते है, या टूटे रवे होते है। समय पाकर मौसम के प्रभाव से उनमे खोट या दरारे पड जाती है; इसलिये उनके सौन्दर्य तथा रग को चमकाना पडता है। असल में तो जौहरी का सारा उद्देश्य ही यह है कि प्रकृति से प्राप्त अनगढ, अनाकर्षक रत्न को अत्यन्त लावण्यमय रत्न बनाये; इसलिये जौहरी के लिये आवश्यक है कि वह इस कला में अत्यन्त प्रवीण हो।

इस बात का भी प्रयत्न किया जाता है कि रत्न सुडौल बन जाये—ऐडा-बैडा न रहे। जो रत्न क्रिस्टल नही होते उनको तो काटना और चमकाना नितान्त आवश्यक होता है। पारदर्शक रत्नो को, चाहे वे रगीन हो या रगरहित, इस प्रकार काटा जाता है कि उन पर पडने वाला प्रकाश सभी ओरसे उसमे जाकर अधिक से अधिक मात्रामे वापस दर्शक की आँख मे लौट आये। ऐसा करने पर ही उसकी प्रकाशीय विशेषताएँ निखरती हैं। रत्नोपल,चन्द्रकान्त, बिडालाक्ष (लहसनिया)आदि अपारदर्शक रत्नो की सतह गोल-उन्नतोदर करके चमका दी जाती है। हम यहा विभिन्न प्रकार की काटो का सामान्य परिचय देकर इस प्रसग को समाप्त कर देगे।

(१) **कैबोशौंग** (cabochon) **काट**—यह काट उन रत्नो को फबती है जिनमें या तो लहसनिया की तरह गजब की दमक हो, या रत्नोपल के समान रगो का कौतुक दिखायी देता हो या तारक लाल और तारक नीलम की-सी तारकितता उनमें विद्यमान हो। और कुछ पत्थरो का सौन्दर्य उनके रगो पर ही निर्भर है। गहरे रग के तामडा सरीखे रत्न रग की गहराई के कारण काले दिखायी देते हैं। इन्हे खोखली कैबोशौग काट से काटा जाये तो रत्न पतला पड जाता है और रग निखर जाता है।

कैबोशौंग काट—का मुख्य रूप शिखर पर से गोल-उन्नतोदर, पीठपर से सपाट और शेष बिना पहल के रहने देना है। ऊपर-नीचे दोनो ओर उन्नतोदर किया जाय तो उसको **दुहरी कैबोशौंग काट** कहेगे। इसी प्रकार **मसूराकार** कैबोशौग काट, **उच्च** कैबोशौग काट (जिसमे शिखर भाग बहुत ऊँचा हो), **सरल** कैबोशौंग काट और **खोखली** कैबोशोग काट, (जिसमे शिखर उन्नतोदर तथा निचला भाग नतोदर भीतर की ओर खोखला) बनाया गया हो—कैबोशौग काट के ये सभी प्रकार प्राचीन काल से चले आ रहे है।

(२) **ज्वलन्त** (Brillient) **काट**—हीरे को पहले कई प्रकार की काटो में काटा जाता था–परन्तु आजकल इसको **ज्वलन्त काट** में काटा जाता है। इस काट से हीरे में अनोखी चमक-दमक आ जाती है और मूल पत्त्थर का काफी भार कटे हुए रत्न में बच जाता है।

(३) **जाल** (Trap) **काट** अथवा **सीढी** (Step) **काट**–इसका प्रयोग पन्ना तथा पुखराज रत्नों में किया जाता है। मेखला से ऊपर तथा नीचे के अनीक समान्तर तथा आड़े (क्षैतिज) होते है। अधिक फैलाव हो जाने से गहरे रग हलके हो जाते हैं।

(४) **गुलाबी** (Rose) **काट**–अब केवल छोटे हीरो में ही काम में लायी जाती है।

ये सभी काटे पृथक्-पृथक् रत्नों की ज्ञात विशेषताओं को ध्यान में रखकर नियत की गयी है।

रंग में निखार उत्पन्न करना–रत्नों की प्राकृतिक आभा को निखारने के लिए कृत्रिम उपाय किये जाते हैं। इस की दो विधियॉ है–ताप द्वारा तथा रासायनिक घोलकों में डुबोकर। इस काम में भी अत्यन्त सतर्क रहने तथा दक्षता की आवश्यकता होती है। कई रत्नो का प्राकृतिक रग तेज धूप में फीका पड़ जाता है। नीले गोमेद, पीले पुखराज, गुलाबी बिल्लौर आदि ऐसे ही रत्न हैं।

रत्नों का निर्माण—मनुष्य रत्नों का अधिक उपयोग सजाने के लिये करता है और इस प्रयोजन से वह आभूषणो मे उन्हे जड़ता है। परन्तु बढिया प्राकृतिक रत्न अधिक मूल्य के होते हैं; इसलिये स्वभावत कृत्रिम रत्न बनाने का मनुष्य का स्वभाव है। सस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों तक में **लोहे से** कृत्रिम रत्न बनाने का उल्लेख है। यह तो स्पष्ट ही लिखा है कि रत्न कृत्रिम बनाये जाते है—इस लिये रत्नो की परीक्षा करना सीखना चाहिये। बनाये गये रत्न चार प्रकार के होते है–(१) **संश्लिस्ट** (Synthetic) (२) **अनुकृत** (Imitation)

तथा (३) युग्म (doublet) और त्रिक (Triplets) तथा (४) पुनर्निर्मित (Reconstructed)

संश्लिष्ट रत्न वह है जिसका रासायनिक सघटन, रवे की बनावट और इसीलिये भौतिक तथा प्रकाशीय विशेषताये वही होती है जो उस प्राकृतिक रत्न की होती है कि जिसका वह स्थानापन्न बनाया गया है। ऐसे रत्नो को उनके असली रत्नो से पहचानना कठिन होता है। सौभाग्य से व्यापारिक दृष्टि से सफल सश्लिष्ट रत्न बहुत थोडे है। ये हैं—कुरुदम, स्पाइनेल, पन्ना और रूटाइल अथवा टिटानिया। क्राइसोबेरिल तथा तामडा आदि अभी प्रयोग-शाला मे ही बनाये जा के है।

सश्लिष्ट गोमेद (Zircon), तामडा, पुखराज, एमिथिस्ट और एलैक्जैन्ड्राइट वस्तुत असली के प्रतिनिधि नही होते—ये असल मे सश्लिष्ट कुरुन्दम अथवा सश्लिष्ट स्पाइनेल ही होते है—इसलिये गुणो में ये अपने प्रतिनिधि प्राकृतिक रत्नो से नही मिलते। इसी-लिये इनको पहचानने मे विशेष कठिनाई नही होती। सश्लिष्ट कुरुन्दम और सश्लिष्ट स्पाइनल को पुनर्निर्मित रत्नो के नाम से भी जो बेचा जाता है वह गल्ती ही है। **पुनर्निर्मित** रत्न वे होते है कि जो असली रत्न के छोटे-छोटे टुकडो को पिघला कर रवो के रूप मे लाये जाते है। कभी पुनर्निर्मित माणिक्यो का प्रचार था—आजकल इनका प्रचलन बहुत ही कम हैं। आजकल किसी भी रत्न को पुनर्निर्मित नही किया जाता परन्तु फिर भी बाजार मे पुनर्निर्मित माणिक्य, नीलम, पन्ना आदि के नाम से रत्न बेचे जाते हैं वे प्राय सश्लिष्ट कुरुन्दम और सश्लिष्ट स्पाइनेल होते है। काच से निर्मित अनुकृत रत्न भी पुनर्निर्मित रत्नो के नाम से बाजार मे बिकते है।

अनुकृत रत्न—काच अथवा प्लास्टिक के बनाये जाते है। काच

और प्लास्टिक के वने होने से इनके तथा असली रत्नों के सभी भौतिक गुण तथा प्रकाशीय लक्षण भिन्न-भिन्न होते है। अतएव इनकी पहचान कर लेना सरल होता है।

सश्लिष्ट तथा असली रत्नो में भेद करना सामान्यतया तो वहुत ही कठिन होता है। फिर भी चतुर जौहरी एक शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शक यत्र की सहायता तथा अभ्यास से इनमें भेद बता ही देते है। इस सम्बन्ध मे विशेष विस्तार से तो प्रत्येक रत्न के साथ-साथ लिखा जायेगा--परन्तु सामन्यतया निम्न विलक्षणताये ध्यान में आ ही जाती है--

(१) सश्लिष्ट रत्नो मे प्राय वायु के बुलबुले होते है जो पूरे गोल होते है। प्राकृतिक रत्न में, यदि वुलवुले होगे भी तो उनकी आकृति सदा बेढगी होती है और उनकी आकृति प्राय क्रिस्टल की मूल आकृति के समान ही होती है।

(२) सश्लिष्ट रत्न के भीतर यदि किसी वस्तु के कण अन्त -प्रविष्ट होगे तो वे वक्र पक्ति मे लगे हुए होगे। प्राकृतिक रत्नो के अन्त प्रविष्ट कण छोटे-वडे होगे और कही होगे-कही नहीं भी होगे।

(३) धारिया होगी तो प्राकृतिक रत्नो मे सीधी रेखाओ के रूप मे होगी और सश्लिष्ट रत्नो में वे प्राय वक्र रेखाओ मे होगी

(४) प्राकृतिक माणिक्यो और नीलमों मे प्रकाश के कारण जो 'रेशम' नाम से प्रसिद्ध प्रभाव दिखायी देता है वह उनके सश्लिष्ट रूपो मे कभी नही दिखायी देता।

(५) सश्लिष्ट रत्नो का वर्ण प्राय गलत होता है, वास्तविक रत्न के रग से नही मिलता। सश्लिष्टो का रग आवश्यकता से अधिक एकसार और 'चिकना' होता है। असली माणिक्यो और

नीलमो का रग रत्न के भिन्न-भिन्न हिस्सो मे अलग-अलग तरह का होता है और यदि उनमे रग की पट्टिया होगी तो वे या तो समातर होगी या अनियमित होगी—कभी वक्र नही होगी ।

युग्मैक तथा त्रिकरत्न वास्तविक रत्नो के दो टुकड जोड कर अथवा शिखर पर सच्चा रत्न और नीचे काच का अनुकृत रत्न जोड कर बनाये जाते हैं ।

अकेली आख से देखकर ऐसे जुड हुए रत्न पहचान में आ जाते हैं । फिर भी सदेह रहे तो ऐसे रत्न को पानी अथवा तैल मे डाल कर देखे । तिरछी दिशा से देखने पर रत्न के दोनो भागो के रग अलग-अलग दीख जायेगे । पानी मे उबालने पर अथवा अल्कोहल मे डुबोने पर दोनो भाग अलग-अलग भी हो जायेंगे ।

नवरत्न या महारत्न तथा उपरत्न—रत्नो की सामान्य विशेषताओ को समझ लेने के पश्चात् अब हम कुछ रत्नो का परिचय पाठको के सम्मुख उपस्थित करना चाहते है । रत्नो की सख्या अनिश्चित है, अनेक लोगो का विश्वास है कि इनकी सख्या ८४ है , इनमे निश्चय ही रत्नो के साथ मणियो को भी गिना गया है, परन्तु यह भी सच है कि नये-नये रत्नो का ज्ञान होता जा रहा है—आज के वैज्ञानिक उनकी आन्तरिक सरचना के अनुसार इन नये खनिज रत्नो का नामकरण करते जा रहे है । आजकल रत्नो की सख्या १०० से ऊपर पहुँच चुकी है ।

नवरत्न—प्राचीन सस्कृतग्रन्थो मे नौ महारत्न या नवरत्नों के नाम पहले गिनाकर कुछ उपरत्न भी गिना दिये गये हैं । 'आयुर्वेद प्रकाश' मे '**रत्नानि नाम्ना नव**'—रत्नो के नाम नौ है, कहकर निम्न-लिखित नौ रत्न गिनाये है—१ वज्र अथवा हीरा २ विद्रुम अर्थात् मूगा ३ मौक्तिक अथवा मोती ४ पन्ना ५ लहसनिया ६ गोमेदक ७ माणिक्य (लाल) ८ हरिनील अथवा नीलम

और ९. पुष्पराज अथवा पुखराज। इसके पश्चात् लिखा है कि लोक में अन्य भी कई रत्न प्रसिद्ध है परन्तु उनको परीक्षा करने वाले 'उपरत्न' कहते है। 'विष्णुधर्मोत्तर' के प्रमाण से 'भाव-प्रकाश' में इन्ही ९ रत्नों को महारत्न कहा है। शुक्रनीति चतुर्थ अध्याय में पन्ने का नाम 'पाचि' कहा है तथा पाचिसमेत इन्ही नौ रत्नों को महारत्न कहा है।

एक अन्यश्लोक (१६१) में यह बताया है कि सबसे अधिक श्रेष्ठ रत्न हीरा है, पन्ना, मणिक्य और मोती श्रेष्ठ हीरे से दूसरे दर्जे पर है; नीलम, पुखराज और वैदूर्य मध्यम दर्जे के है और गोमेदक तथा मूगा सबसे निचले दर्जे के रत्न हैं।

नौ ग्रहो के नौ रत्न—प्राचीन ज्योतिष शास्त्र में स्पष्ट ही यह उल्लेख मिलता है कि नौ ग्रहो के प्रतिनिधि नौ रत्न हैं। ये इस प्रकार है—

नाम ग्रह	नाम महारत्न
सूर्य	माणिक्य (लाल)
चन्द्र	मोती
मगल	मूगा
बुध	पन्ना
बृहस्पति	पुखराज
शुक्र	हीरा
शनि	नीलम
राहु	गोमेद
केतु	लहसनिया

रत्नधारण—सूर्य आदि नवग्रहों के ये जो नवरत्न बताये हैं। इनके सम्बन्ध में लिखा है कि जब कोई ग्रह जन्मकुण्डली में महादशा

अथवा अन्तर्दशा मे अनिष्ट स्थान पर बैठ कर अनिष्ट फल देने वाला हो तो उस ग्रह की शाति तथा अनिष्ट की आशका को दूर करने के लिये उस ग्रह से सम्बद्ध उत्तम जाति के रत्न को धारण करना चाहिये। रत्न-धारण करते हुए यदि उसका शरीर से सस्पर्श बना रहेगा तो उस रत्न की छाया शरीर मे प्रतिबिम्बित होगी अथवा उसकी द्युति शरीर मे तरगायित होकर अनिष्ट का प्रतीकार करेगी।

"रसरत्नसमुच्चय"-कार लिखते है—

"सूर्यादिग्रहनिग्रहापहरणं दीर्घायुरारोग्यदं,
सौभाग्योदयभाग्यवश्यविभवोत्साहप्रदं धैर्यकृत्।
दुश्छायाचलधूलिसगतिभवाऽलक्ष्मीहरं सर्वदा,
रत्नानां परिधारणं निगदित भूतादिभिर्नाशनम्"

अर्थात् ऊपर कहे हुए रत्नो के धारण करने से सूर्यादि नव ग्रहो की समग्त पीडाएँ नष्ट हो जाती है, दीर्घायु और आरोग्य की प्राप्ति होती है, सौभाग्य का उदय होकर भाग्य, धारण करने के वाले के अनुकूल होता है; उसके पास उत्साह और धैर्य का अटूट भण्डार भर जाता है, अमगल छाया और दूपित वातावरण उसको कष्ट नही देने, भूत-प्रेत और पिशाच आदि उस पर अपना प्रभाव नही डाल पाते।

इसके अतिरिक्त ज्योतिप शास्त्र मे व्यक्ति के जन्म के साथ महारत्नो का सम्बन्ध वताया गया है। इस दृष्टि से भी भारतीय पद्धति मे नौ ग्रह ही महारत्न माने गये है—मेष और वृश्चिक राशि के साथ **मूंगा**, वृप और तुला राशि के साथ **हीरा**, मिथुन और कन्या राशि के साथ **पन्ना** , कर्क और सिह राश के के साथ **माणिक्य**, धनुराशि के साथ **पुखराज**, मकर राशि के साथ

नीलम; कुम्भ राशि के साथ **गोमेद** और मीन के साथ पुखराज का सम्बन्ध बताया गया है। अतएव पहले इन नवरत्नो का विस्तृत परिचय यहा दिया जायेगा।

उपरत्न—'आयुर्वेदप्रकाश' आदि ग्रन्थों में निम्नलिखित उपरत्न गिनाये है- वैक्रान्त, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, लाजवर्द, लालमणि, पेरोजा (फिरोजा), मोती की सीप, काच पत्थर, नीली-पीली आदि, मणिया आदि।

आजकल के वैज्ञानिक, रत्नो को 'बहुमूल्य' (precious) तथा 'अर्धबहुमूल्य (Semi-precious) नाम से दो श्रेणियो में बाटते हैं। परन्तु इस श्रेणीभेद को वे प्राय अवैज्ञानिक ही बताते है। तथापि मुल्य और अमुल्य भेद तो किये ही जा सकते है। कुछ उपरत्नो का विवरण भी इस प्रारम्भिक पुस्तक मे दिया गया है।

रत्नों का ज्योतिष में प्रयोग

रगो का आध्यात्मिक रहस्य; सात्विक, राजसिक और तामसिक रग; रत्नो का स्वास्थ्य पर प्रभाव; लग्न के अनुकूल रत्न चुनिये; स्त्रियो के लिये रत्न चुनाव का विशेष नियम; कुडलियों के उदाहरण; कुडली में जिस ग्रह को बलवान् करने से लाभ होता दीखता हो उसी को बलवान् करने के लिये रत्न चुनिये; अनिष्ट ग्रह को और अधिक बलवान् मत बनने दीजिये; नौकरी में उन्नति रुके तो कौन सा रत्न पहने ? जिस कन्या के विवाह मे देरी हो उसको कौन सा रत्न पहनाये ? रोगानुसार विविध रत्न; कुडलियो के उदाहरण ।

रंगो का स्वरूप तथा आध्यात्मिक रहस्य—१ रत्नो का ज्योतिष मे उपयोग भली प्रकार समझने के लिये यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम पाठक गण "प्रकाश" के निर्माण (**Constitution**) पर विचार कर ले। आज के वैज्ञानिक युग मे इस तथ्य से प्रत्येक पढा लिखा व्यक्ति भली प्रकार परिचित है कि जो प्रकाश सूर्य से चलकर पृथ्वी पर हम तक आता है वह सात रगो (वर्णों) का

मिलकर वना हुआ है ; वह केवल श्वेत रंग का ही नही है। सच पूछिये तो श्वेत रग के नाम की संसार में कोई वस्तु है ही नही; सात रगों के सम्मिश्रण ही को श्वेत रग कहते हैं।

२ हमारे शास्त्रों में आता है कि सूर्य भगवान् के रथ के सात घोडे है। "सप्त अश्व" से तात्पर्य भी इन सात गतिशील रश्मियों से है, क्योकि संस्कृत भाषा में **'अश्व'** शब्द का प्रयोग शक्ति तथा गति अर्थो में ही होता है। सूर्य की किरणे जिन सात रगों से मिलकर वनी है उनको वरसात वाले दिनो में आकाश पर इन्द्र धनुष के रूप में सभी लोगों ने देखा हुआ ही है। बरसात के दिनों मे पानी की वून्दों में से गुजर कर जब सूर्य का प्रकाश आता है तो सात रगों में विभक्त होकर इन्द्र धनुष का मनोहारी दृश्य उपस्थित करता है।

(३) अव तो प्रत्येक पाठशाला में क्रियात्मक रूप से सूर्य के प्रकाश को सात रगो में बड़ी सुविधा से विभक्त करके किसी भी क्षण दिखलाया जा सकता है। इस उद्देश्य के लिये केवल कॉच का त्रिकोणाकार एक खण्ड, जिसे अग्रेजी भाषा में प्रिज्म (Prism) कहते है, प्रयोग में लाया जाता है। सूर्य की किरणे जब इस प्रिज्म (prism) में से गुजरती हैं तो सात रगों मे स्वत विभक्त हो जाती हैं। उनको कागज पर डाल कर देखा जा सकता है।

(४) कहने का भाव यह है कि सूर्य की किरणो में सात रंग सम्मिलित है। ये सात रग इन्द्र धनुष में अथवा प्रिज्म (Prism) में से गुजर कर एक विशेष नियत क्रम में ही सदा रहते है। वह क्रम इस प्रकार होता है—बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, संगतरिया तथा लाल। इसी तथ्य को अंगरेजी का 'VIBGYOR' शब्द प्रकट करता है, जिसमें—

V—Violet—बैंगनी
I—Indigo—नीला
B—Blue—आसमानी

G—Green—हरा,
Y—Yellow—पीला,
O—Orange—सगतरिया या नारगी,
और R—Red—लाल, हैं ।

(५) अब प्रश्न यह है कि विविध प्रकार के रगो के पीछे क्या फिलासफी है ? विविध पदार्थ विविध रगो के ही क्यो प्रतीत होते हैं ? अथवा दृष्टि-गोचर होते है । इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जब आप किसी "पीली" वस्तु, कपड आदि, को देखते हैं तो वस्तु-स्थिति यह होती है कि जो कपडा आप देख रहे होते हैं उस पर सूर्य की किरणो का प्रकाश पडता है । जब किरणें उस वस्त्र मे प्रवेश करती है तो अपने सात रगो मे विभक्त हो जाती है । पीला कपडा और तो सभी ६ रग अपने अन्दर रख लेता है परन्तु पीले रग की रश्मियो को बाहर फेंक देता है। ये पीले रग की रश्मिया जब हमारी आँख के अन्दर जाती है तो हम को वह कपडा पीला दिखायी देने लगता है । इसी प्रकार एक हरे रग के वृक्ष की भी स्थिति है । हम को वह हरा वृक्ष इस लिये हरा प्रतीत होता है कि वह वृक्ष प्रकाश के ६ रग तो अपने मे समेट लेता है; और केवल हरे रग को बाहर फेंक देता है । हमारी आखे इस हरे रग की रश्मियो को ही, चूँकि देखती हैं, इसलिये हम कहते हैं कि वृक्ष का रग हरा है । इसी प्रकार एक लाल झडा लाल रग का इसलिये दृष्टि गोचर होता है कि वह झडा और तो सब रग अपने मे रखलेता है केवल लाल रग को छोड देता है जो कि लौटती किरणो द्वारा हमारी आँखो के अन्दर जाकर लाल रग के रूप मे झडे को देखा करता है । यही नियम अन्य रगो मे दृष्टि गोचर होने वाली समस्त वस्तुओ पर भी इसी प्रकार लागू समझ लेना चाहिये ।

(६) उपर्युक्त विवरण से एक आध्यात्मिक तथ्य का उद्घाटन

भी होता है। वह यह कि रग "श्वेत" उन वस्तुओं का होता है जो अपने पास कोई रग नही रखती, किसी भी रग में रगी नही जाती, निलिप्ति रहती हैं। इसी कारण ऐसी वस्तुएँ शुद्ध-पवित्र एवं सात्विक मानी जाती है। और इसी कारण शुक्ल रग को सात्विकता का प्रतीक माना गया है। दूसरी तरफ जव कोई वस्तु प्रकाश की सातो की सातो किरणो को, सातो के सातो रगो को, अपने अन्दर समेट ले और ससार को कुछ न दे तो वह वस्तु काले रग वाली होती है। चूँकि ऐसी वस्तु ने स्वार्थ से काम लिया, दान-प्रियता नही दिखलायी, इसी लिये लोग काले रग को पसन्द नही करते। हाँ, जिनकी तामसिक तथा भोग की प्रवृत्ति होती है वे लोग काले रग को अवश्य पसन्द करते है।

(७) रगो का अर्थात् प्रकाश के उन रगो का, जो वस्तुओ द्वारा प्रतिक्षिप्त (Reflect) होकर हमारी आखो तक पहुँचते है, प्रकृति के तीन गुणो—सत्, रज्, तम, से घनिष्ठ सवन्ध है। क्योकि प्रत्येक रग अपने अन्दर एक विशिष्ट प्रभाव रखता है। सृष्टि की चर्चा करते हुए वेद भगवान् ने कहा है—"प्रजा एका लोहितशुक्ल-कृष्णा वह्वी प्रजा सृजमाना सरूपा।" अर्थात् एक ही प्रकृति जिस के "लोहित" 'शुक्ल' और 'कृष्ण' (लाल-श्वेत और काला) तीन रूप है, ससार के विविध पदार्थों का रूप धारण किये हुए है। इसी तथ्य को महामुनि पातजलि ने अपने योग-सूत्रो में और भी स्पष्ट किया है। आपने लिखा है—"प्रकाशक्रियास्थितिशीलम्, भूतेन्द्रियात्मकम्, भोगापवर्गार्थम्, दृश्यम्" अर्थात् यह समस्त दृश्य जगत्, चाहे वह भूतात्मक (Inorganic) हो, चाहे इन्द्रियात्मक (Organic) हो, मनुष्यो को उनके शुभ अथवा अशुभ अर्जित कर्मो का फल भुगतवाने तथा उनको मोक्ष दिलाने के लिये रचा गया है। यह दृश्य जगत् "प्रकाश", 'क्रिया' तथा 'स्थिति' शील है।

यहाँ तीन गुणो-सत्व, रज, तम-को क्रमश "प्रकाश", 'क्रिया', तथा 'स्थिति' का पर्यायवाची रखा है। बात है भी ठीक ! सूत्र में 'प्रकाश' शब्द से अभिप्राय सूर्य की समस्त रश्मियो—सातो के सातो रगो से निर्मित–'श्वेत' रग से है जो प्रकाश तो है ही, साथ ही परोपकार, आत्मोत्सर्ग, आदि यज्ञीय भावनाओ का भी प्रतीक है।

'क्रिया' शब्द लोहित लाल रग का पर्यायवाची बना है। इसी प्रकार 'स्थिति'—एक ही आलस्य की स्थिति मे बने रहना (Inertia) आलस्य, अन्धकार, मूर्खता, स्वार्थ आदि, काले पदार्थों का द्योतक है। इसी लिये कपट तथा झूठके बाजार को '**काला**' बाजार और धोखे से कमाये धन को '**काला**' धन कहते हैं।

(८) कम्यूनिस्ट लोगो ने अपना झडा लाल रग का यूं ही '**घुणाक्षर**' न्याय से नही निश्चित किया हुआ। इस के पीछे लाल रग की निरी रजोमयी फिलासफी उपस्थित है। लाल रग उग्र क्रिया, हिंसा आदि का प्रतीक है। जिस प्रकार की किसी व्यक्ति अथवा जाति की समष्टि रूप से प्रकृति होती है उसी प्रकृति के अनुरूप ही वह व्यक्ति अथवा वह देश अपने झडे का रग भी चुन लेता है।

(९) कहने का निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक पदार्थ का रग अपने अन्दर एक विशेष प्रकार का गुण तथा प्रभाव रखता है।

रत्नो के अधिक प्रभाव का कारण—रत्नो का प्रभाव इस लिये अधिक होता है कि उनमे से निकलने वाला रग एक घनीभूत (concentrated) अवस्था मे होता है। रग रश्मियो का घनीभूत अवस्था मे रत्नो द्वारा प्राप्त होना ही 'रत्नो' के मूल्य का ज्योतिष की दृष्टि मे मुख्य कारण है। एक पीले काच के टुकडे और एक पीले पुखराज मे यही तो अन्तर है कि पीले काच के टुकडे से निकली हुई पीली रश्मि यद्यपि कुछ उपयोगी है परन्तु उतनी कदापि नही जितनी वह पुखराज से घनीभूत (Concentrated) दशा मे होकर प्राप्त होने से हो जाती है।

(१०) **स्वास्थ्य पर प्रभाव**—रत्नो अथवा मणियों का स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव होता है; इस तथ्य को आयुर्वेद शास्त्र (Medical Science) ने भी स्वीकार किया है । उनका कहना है कि स्वास्थ्य की प्रगति के लिये 'मणि' 'मन्त्र' तथा 'औषधि' तीनो लाभकारी है । जिन सिद्धान्तो के आधार पर हम मणियो की उपयोगिता सिद्ध करते है उन ही सिद्धान्तो के अनुसार 'मन्त्र' की सार्थकता तथा लाभ सिद्ध होता है । जैसे मणियो से निकलने वाला रग अपने अन्दर एक घनीभूत प्रभाव एक वीचि (wave) होने के नाते रखता है, इसी प्रकार मन्त्र भी तो शब्द-वीचियों (Sound waves) का एक अनाहत एव विशिष्ट रूप ही तो है। अस्तु मन्त्रो का विवेचन विषयान्तर हो जायेगा अत हम उस का अधिक उल्लेख यहा नही करते ।

(११) **रंग चिकित्सा भी इसी आधार पर है**—रगों के विविध प्रकार के प्रभाव को देखते हुए आधुनिक युग के कई चिकित्सकों ने रगदार पानी से चिकित्सा की विधि को अपनाया है । विविध रगो की कई बोतलो मे शुद्ध जल यदि धूप में कई दिन पडा रहे तो उस में बोतल के रग के प्रभाव का समावेश हो जायेगा । मानो वह जल अव वही प्रभाव करता है जोकि रत्न करते है । उदाहरण के लिये यदि किसी कुंडली में 'बृहस्पति' को वलवान् करना हो तो उस का एक तरीका यह भी होगा कि जिस व्यक्ति की वह कुंडली है उस को वह पीली बोतल वाला जल एक नियत समय तक पिलाया जाये ।

(१२) **विविध रंगों का अलग-अलग प्रभाव क्यों ?**—बात इस प्रकार भी है कि विविध रंग स्वय श्वेत प्रकाश का अंग होते हुए विविध रग इस कारण हैं कि उन की वीचि लम्बाई (wave length) एक दूसरे से भिन्न है । सच पूछो तो ऐसा प्रतीत होता

है कि ससार मे विविधता का एक मात्र कारण ही यह है कि वस्तुएँ, जिस शक्ति-प्रकृति (Energy) से निर्मित है, उस शक्ति की वीचि लम्बाई (wave-length) अथवा गति भिन्न-भिन्न पदार्थों मे भिन्न-भिन्न है—आज के विज्ञान से यह तथ्य सिद्ध है। **शक्ति** (Energy) ही **का यह सारा खेल है।**

(१३) अब प्रश्न यह है कि यह कैसे जाना जाये कि अमुक रग का अमुक प्रभाव है ? हमारे पूर्वजो ने अपने गहन अध्ययन के आधार पर इस प्रश्न का समाधान किया है। जहा भी विविध गुणो-स्वभावो-दशाओ इत्यादि का प्रश्न उपस्थित हो ज्योतिष शास्त्र 'ग्रहो' की शरण में जाता है। **ज्योतिष का अटल एवम् मौलिक सिद्धान्त है कि संसार का कोई भी पदार्थ क्यों न हो और उस का जीवन के किसी भी विभाग से संबन्ध क्यो न हो, उस पदार्थ का प्रतिनिधित्व कोई न कोई ग्रह अवश्य करता है।**

(१४) जैसे हम जानते हैं कि ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सूर्य ग्रह आख, हड्डी, पिता राजा आदि पदार्थों का प्रतिनिधि अथवा कारक है, इसी प्रकार रत्नो में सूर्य, माणिक्य (Ruby) का प्रतिनिधि अथवा कारक है। इसी प्रकार चन्द्रमा, मगल आदि समस्त ग्रह किसी न किसी रत्न के कारक होकर उस का प्रतिनिधित्व करते है। कौन सा ग्रह किस रत्न आदि का प्रतिनिधि है, इसको निम्नलिखित तालिका मे देखिये—

ग्रह	**रत्न**	**अंग्रेजी नाम**
सूर्य	माणिक्य	Ruby
चन्द्र	मोती	Pearl
मगल	मूंगा	Coral
बुध	पन्ना	Emerald
वृहस्पति	पुखराज	Topaz
शुक्र	हीरा	Diamond
शनि	लोहा, नीलम	Sapphire

राहु	गोमेद	Hessonite
केतु	लहसनिया	Cat's eye

(१५) **लग्न के अनुकूल रत्न का चुनाव**—ज्योतिष शास्त्र में रत्नों का बहुत प्रयोग किया जाता है। लग्न का स्वामी जो ग्रह हो उस ग्रह से सम्बधित रत्न को पहनने का आदेश किया जाता है। ज्योतिष शास्त्र में लग्न (Ascendant) का महत्व कुण्डली के शेष ११ भावों से कही बढ कर है। जीवन की प्राय सभी आवश्यक वस्तुओं का समावेश लग्न में है। मनुष्य अल्पायु होगा या दीर्घजीवी; मनुष्य धनी होगा अथवा निर्धन; मनुष्य यशस्वी होगा अथवा अपमानित; मनुष्य स्वस्थ रहेगा अथवा रोगी;—इन सब बातो का निर्णय लग्न पर ही से किया जाता है। अत' लग्न का ज्योतिष में महत्व सुस्पष्ट है। यही कारण है कि ज्योतिषी लोग लग्न के स्वामी ग्रह के अनुकूल ही रत्न पहनने की अनुमति देते है ताकि आयु,धन यश, शक्ति आदि सभी आम वस्तुएँ व्यक्ति को अधिक मात्रा मे प्राप्त हो सकें।

(१६) किस लग्न के लिये कौन-सा ग्रह-स्वामी होता है और उस ग्रह के लिये कौन सा रत्न पहनना चाहिये यह बात नीचे दी हुई तालिका से स्पष्ट हो जायेगी —

लग्नराशि	संख्या	स्वामीग्रह	अनुकूल रत्न
मेष	१	मगल	मूँगा
वृषभ	२	शुक्र	हीरा
मिथुन	३	वुध	पन्ना
कर्क	४	चन्द्र	मोती
सिंह	५	सूर्य	माणिक्य
कन्या	६	वुध	पन्ना
तुला	७	शुक्र	हीरा
वृश्चिक	८	मगल	मूँगा
धनु	९	गुरु	पुखराज

मकर	१०	शनि	लोहा,नीलम
कुम्भ	११	शनि	लोहा, नीलम
मीन	१२	गुरु	पुखराज

(१७) **स्त्रियो के लिये विशेष नियम**—स्त्रियो की कुण्डली मे भी उपर्युक्त नियम लागू किया जा सकता है और लग्न के स्वामी ग्रह के अनुरूप रत्न आदि पहनने का आदेश दिया जा सकता है। परन्तु स्त्रियो के लिये 'गुरु-ग्रह' का विशेष महत्व है। स्त्री की कुण्डली मे 'गुरु' उस के पति का सदा सर्वदा कारक होता है। गुरु के बलाबल पर स्त्री के पति की आयु, उसका धन तथा स्वभाव अधिकतर निर्भर रहते हैं। चूंकि, कम से कम, भारत मे स्त्रिया बहुधा अपने पति पर निर्भर होती हैं; अत उनकी कुण्डली मे गुरु का बलवान् होना नितान्त आवश्यक है। अत जिन बालिकाओ के विवाह होने में विलम्ब हो रहा हो उनको 'पुखराज' अवश्य पहिनना चाहिये। 'पुखराज' पहनने से 'गुरु' अधिक बलवान् होगा; जिस के फलस्वरूप विवाह अपेक्षाकृत शीघ्र होगा; क्योकि देर से विवाह होने मे कारण यही होता है कि स्त्री की कुण्डली मे सप्तम भाव, सप्तम भाव का स्वामी तथा उसी भाव का कारक अर्थात् वृहस्पति पापी ग्रहो की युति अथवा दृष्टि द्वारा निर्बल पाये जाते हैं। इन तीन अ गो मे गुरु का विशेष महत्व है। जब तीन अ गो मे मुख्य अ ग 'गुरु', पुखराज पहिनने से बलवान् होगा तो स्पष्ट है कि विलम्ब कम हो जायेगा।

(१८) जिन स्त्रियो की लग्न 'मिथुन' अथवा कन्या हो और उन की कुण्डली में गुरु को सूर्य, शनि अथवा राहु दृष्टि अथवा युति द्वारा प्रभावित कर रहे हो उनके लिये तो और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि वे पुखराज पहिने रहे क्योकि ऐसी दशा मे 'गुरु' न केवल 'पति' का कारक ही होता है बल्कि पति भाव का स्वामी भी। अत स्पष्ट है कि गुरु पर पडने वाला पाप-प्रभाव अधिक अनिष्टकारी होगा। यदि ऐसी स्थिति मे 'पुखराज' न

पहिना जावे, तो पति से पृथक् हो जाने तथा त्यक्त (Divorced) तक हो जाने की नौबत आ जाती है।

(१९) उदाहरण के लिये कुण्डली सख्या १ में ले। इस बालिका का जन्म २५/२६–९—१९४५को हुआ और जन्म समय विंशोत्तरी पद्धति के अनुसार सूर्य की महादशा के शेष वर्षादि १–६–८ थे।

कुण्डली सं० १
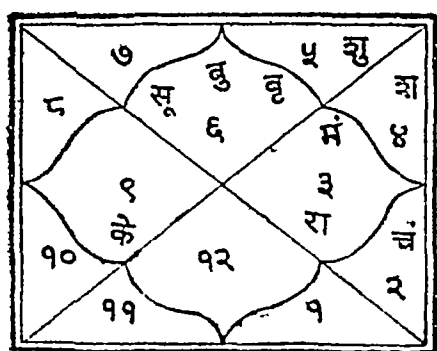
यह कन्या लग्न की कुण्डली है; अत यहा 'गुरु' का सप्तमाधिपति तथा सप्तम भाव कारक एक साथ हो जाना अत्यन्त महत्व रखता है। अब पति-द्योतक गरु आदि पर थोडा विचार कीजिये। सूर्य न केवल अपनी दृष्टि से सप्तमभाव पर अपना प्रभाव डाल रहा है अपितु अपनी युति से सप्तमेश तथा पति-कारक गुरु को भी प्रभावित कर रहा है। शनि भी अपनी तृतीय दृष्टि द्वारा उसी प्रतिनिधित्व शाली गुरु को प्रभावित्त कर रहा है। इसी प्रकार राहु-अधिष्ठित राशि का स्वामी, बुध भी अपनी युति द्वारा उसी गुरु तथा सप्तम भाव को प्रभावित कर रहा है। अब चूँकि सूर्य, शनि तथा राहु, तीनो के तीनों, पृथक्ताजनक (Separative) ग्रह है अत इन के प्रभाव का फल यह हुआ कि इस बालिका को उस के पति ने विवाह के एक मास के अन्दर ही अन्दर त्याग दिया। यदि लडकी को विवाह से पूर्व पुखराज पहनाया जाता तो बहुत सम्भव था कि बात त्याग तक न पहुँचती।

(२०) गुरु, धन का भी कारक है। मान लीजिये किसी व्यक्ति का जन्म कुम्भ लग्न मे हुआ है और उसकी जन्म-कुण्डली में "गुरु" पर

शनि तथा मङ्गल की दृष्टि है—जैसा कि कुण्डली सख्या २ में दर्शाया गया है, ऐस स्थिति मे व्यक्ति की आय का स्तर बहुत कम हो जाता है क्योकि एक तो "गुरु" स्वय "अर्थ" का कारक है; दूसरे वह यहा लाभाधिपति है और तीसरे वह धन भाव का स्वामी भी है। अत "धन" का इस प्रकार का व्यापक प्रतिनिधि बनने वाला गुरु यदि पापप्रभाव मे हो तो धन की मात्रा का कम हो जाना स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति मे गुरु को बलान्वित करना अभीष्ट होगा और गुरु "पुखराज" पहिनने से बलान्वित होगा। इस प्रकार "पुखराज" का उपयोग धन के क्षेत्र मे भी बहुत अधिक है।
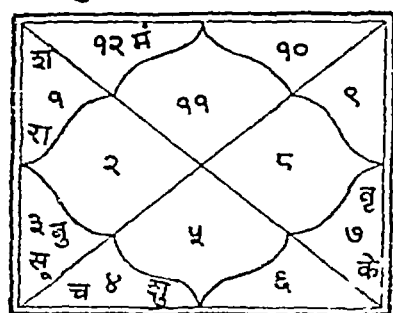
कुण्डली सख्या २

(२१) "गुरु" जहा "पति" तथा "धन" का कारक है वहा यह ग्रह "पुत्र" का भी कारक है। अत उपर्युक्त कुण्डली, जिस मे कि वह पञ्चम भाव तथा उस के स्वामी के साथ-साथ पाप दृष्ट है, इस व्यक्ति के पुत्रहीन होने को बतला रहा है। यदि पुखराज पहनाया जाता तो कुछ लाभ की सभावना थी।

(२२) उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो गया होगा कि जब कुण्डली मे किसी ग्रह के बलवान् किये जाने से लाभ पहुँचाना हो तो उस ग्रह से सबद्ध रत्न पहनना चाहिये। यदि किसीव्य क्ति का दिल कमजोर हो अथवा उस को दिल का दौरा पडने की सभावना हो तो उस व्यक्ति के "माणिक्य" धारण करने से उस का **सूर्य** बलवान् किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि किसी स्त्री आदि को "गशी" का रोग हो अथवा किसी व्यक्ति को "मिरगी" का रोग हो तो अन्य उपचार के अतिरिक्त उस व्यक्ति के **चन्द्रमा** को बलवान् किया जाना अपेक्षित रहेगा। इस प्रयोजन के लिये उस व्यक्ति को **चान्दी की**

अंगूठी में मोती पहिनना चाहिये । यदि किसी व्यक्ति को "सूखे" (Atrophy of muscles) का रोग हो तो उसके **मङ्गल को बलवान् करना आवश्यक होगा**। ऐसा करने के लिये मूंगा पहिनाया जायेगा । यदि किसी व्यक्ति को **"दमा" की शिकायत है** अथवा वह **हरनिया आदि अन्तड़ियों** के किसी रोग से पीडित है तो उसे उचित है कि वह "**पन्ना**" पहिने, जिससे **मिथुन तथा कन्या राशि का स्वामी बुध** बलवान् हो सके। यदि किसी व्यक्ति को "अनपचा" है अर्थात् **खाया-पिया पचता** नही है अथवा उसे **जिगर की कोई शिकायत है**, तो उसे गुरु को बलवान् करना चाहिये और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये **पीले रङ्ग का पुखराज** पहिनना चाहिये । यदि किसी व्यक्ति को '**वीर्य" संबन्धी** कोई शिकायत हो तो उस को **शुक्र** ग्रह से सबधित "**हीरा**" पहिनना चाहिये ।

(२३) रत्नो के प्रयोग के सदर्भ में इतना ध्यान रहे कि जो **पापी सग्रह** शनि, मगल आदि, अपनी स्थिति अथवा दृष्टि से **अनिष्ट की उत्पत्ति कर रहा हो उसको बलवान् नहीं करना चाहिये** अर्थात् उस ग्रह से सबन्धित रत्न नही पहिनना चाहिये । इस मे कारण यह है कि यदि ग्रह से सबन्धित रत्न पहना दिया गया तो वह ग्रह और अधिक बलवान् होकर और अधिक अनिष्ट-कारी होगा । जैसे मान लीजिये कि किसी पुरुष अथवा स्त्री को कुण्डली में **कुभराशि का सूर्य**, पुत्रभाव अर्थात् पञ्चम भाव मे स्थित है तो ज्योतिष शास्त्र के अनुसार स्पष्ट है कि पृथक्ताकारक (Separative) ग्रह, सूर्य, अपनी शत्रुराशि में स्थिति आदि के कारण, गर्भो को पनपने न देगा और गर्भपात होते चले जावेगे । ऐसी स्थिति में सूर्य से सबन्धित "माणिक्य (Ruby) तथा स्वर्ण, यदि पहिना गया तो उलटा सूर्य बलवान् होकर पञ्चम भाव अर्थात् गर्भो को और अधिक हानि पहुँचायेगा ।

(२४) कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जीवन मे एक ऐसे ग्रह की दशाभुक्ति चल रही होती है जो जन्मकुण्डली मे पापघरो-तृतीय, षष्ठ, अष्टम, द्वादश—का स्वामी है; जैसे—कर्क लग्न वालो के लिये बुध, जो कि तृतीय तथा द्वादश भावो का स्वामी बनता है, अथवा मीन लग्न वालो का शुक्र जो कि तृतीयेश, अष्टमेश बनता है—ऐसी स्थिति मे **बुध अथवा शुक्र** को "पन्ना" अथवा "हीरा" पहिनकर बलवान् नही बनाना चाहिये क्योकि उनके बलवान् होने से पापी अनिष्ट भावो के स्वामी बलवान् होगे और फलस्वरूप अनिष्ट की वृद्धि होगी। ऐसी दशा मे तो इन बुध-शुक्र का निर्बल होना वाछनीय होगा क्योकि पापी ग्रहो का निर्बल होना धन की वृद्धि करने वाला होता है। **ऐसी स्थिति में इन बुध शुक्र आदि पापी ग्रहो के शत्रु ग्रहो से संवन्धित रत्न पहिनना चाहियें** विशेपतया उस स्थिति मे जवकि वे शत्रु ग्रह बुध आदि को अपनी दृष्टि आदि से प्रभावित भी कर रहे हो। ऐसा करने से "विपरीत राजयोग" की सृष्टि होगी अर्थात् पापियो का पाप नाश होकर धन आदि की प्रचुर उपलब्धि होगी। **उदाहरण** के लिये यदि किसी कर्क लग्न वाली कुण्डली मे बुध, पञ्चम स्थान मे स्थित हो तो बुध की यह स्थिति प्रशस्त है अर्थात् द्वादश तथा तृतीय भावो के अनिष्ट को नाश करने वाली है क्योकि बुध इन दोनो ही स्थानो से अनिष्ट स्थान मे अर्थात् द्वादश से षष्ठ और तृतीय से तृतीय स्थित होगा। ऐसी स्थिति मे यदि उस बुध पर मङ्गल, शनि आदि पापी ग्रहो की युति अथवा दृष्टि हो और किसी नैसर्गिक शुभ ग्रह गुरु आदि की दृष्टि अथवा युति न हो तो बुध की यह अनिष्ट स्थिति अतीव लाभप्रद सिद्ध होगी और व्यक्ति को लाखो रुपयो का स्वामी बनादेगी। अत निष्कर्प यह निकला कि पापी भावो के स्वामियो को रत्नो द्वारा वलवान् नही करना चाहिये। हो सके तो निर्वल करना चाहिये।

(२५) जिन सरकारी कर्मचारियों की उन्नति (Promotion) रुकी हो उनको चाहिये कि वे अपनी जन्म कुण्डली में नवमाधिपति को बलवान् करने का प्रयत्न करे क्योंकि नवम भाव भाग्य (Career) तथा राज्य कृपा (Govt. favour) का है अत नवमेश के उपयुक्त रत्न के धारण द्वारा बलवान् किया जाना पदोन्नति में सहायक होगा।

(२६) ज्योतिष शास्त्रानुसार "काल पुरुष" के अगो के पीड़ित होने के कारण जिन रोगो की उत्पत्ति होती है उनके निवारणार्थ पीडित ग्रह का रत्न पहना कर उसे बलवान् करना चाहिये। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कुण्डली स ३ के इस व्यक्ति को **हरनिया** (Hernia) का रोग है। स्पष्टतया यहा पर ६ सख्या की राशि पर **सूर्य** तथा **शनि** का पृथक्ताजनक प्रभाव है। ६ संख्या राशि के स्वामी बुध पर सूर्य का युति द्वारा तथा राहु का दृष्टि द्वारा प्रभाव है। इसी प्रकार ६ नम्बर भाव तथा उसके स्वामी पर भी शनि का युति द्वारा प्रभाव है। अतः यहा बुध तथा शुक्र को बलवान् किया जाना उपयुक्त एव हितकर होगा और एतदर्थ पन्ना तथा हीरा पहिनना आवश्यक होगा।
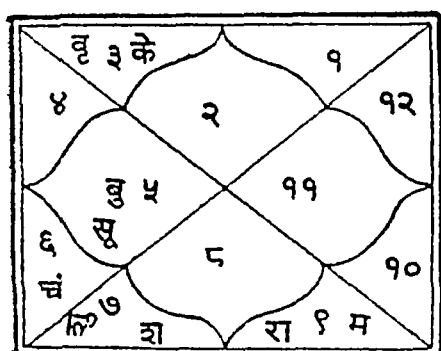
कु० स० ३

वृ ३ के
१
४
२
१२
बु ५
सू
११
६
चं
८
१०
शु ७
श
रा ९ म

(२७) निम्नलिखित कुण्डली स ४ वाले को **दिल का दौरा** (Heatr

Attack) पडने की शिकायत थी। देखिये, केतु की पूर्ण पञ्चम दृष्टि पञ्चम भाव तथा उसके स्वामी **मङ्गल**, दोनो, पर है। इसी केतु की नवम पूर्ण दृष्टि पॉच सख्या की राशि तथा उसके स्वामी **सूर्य** पर भी है। अत यहा हृदयद्योतक मङ्गल तथा सूर्य का बलवान् किया जाना उपयुक्त रहेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सोने की अगूठी मे **माणिक्य** (सूर्य) तथा **मूँगा** (**मङ्गल**) लगवाकर पहिनना चाहिये।
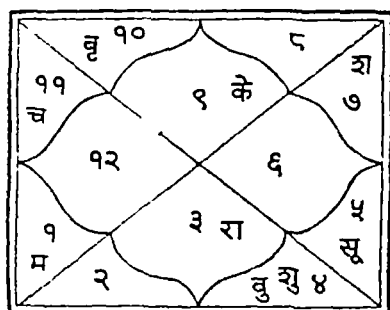
कु० स० ४

(२८) निम्नलिखित कुण्डली सं ५ वाले व्यक्ति को **दमा** की शिकायत रही। यहा तृतीयाधिपति शुक्र, सूर्य तथा राहु के पाप प्रभाव में आ चुका है। अर्थात् पाप मध्यत्व मे है, और उस पर शनि की पूर्ण दृष्टि है। इसी प्रकार तृतीय राशि तथा उस का स्वामी बुध, मङ्गल की युति के प्रभाव मे है। अत शुक्र तथा बुध (सास की नाली के प्रतिनिधि) का बलवान् किया जाना उपयुक्त होगा। इस के लिये **हीरा** तथा **पन्ना** पहिनाया जाना चाहिये, जिस से दमा के रोग को शान्त होने मे सहायता मिले।
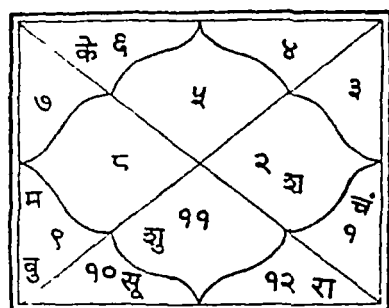
कु० स० ५

कु० स० ६
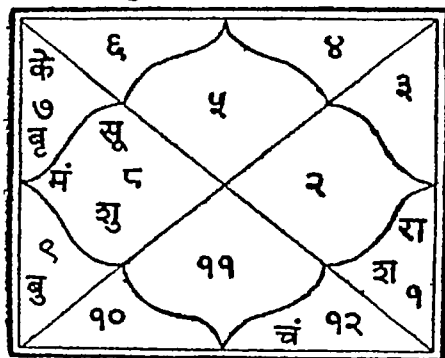
(२९) निम्नलिखित कुण्डली स ६ में व्यक्ति को **आमाशय** (Stomach) में व्रण (ulcer) था। पेट के स्थान अर्थात् पञ्चम भाव में सूर्य बैठा है जो कि वहाँ शनि-अधिष्ठित राशि का स्वामी तथा द्वादशेश होकर आया है और इस प्रकार पेट को हानि पहुँचा रहा है। पञ्चमेश शनि भी, अनिष्ट द्वादश भाव में शत्रु राशि में स्थित होकर प्रबल मङ्गल द्वारा जो कि राहु-अधिष्ठित राशि का स्वामी भी है, पीडित है। अत पञ्चम शनि निर्बल है और पेट रोग की शान्ति के लिये उसका बलवान् किया जाना आवश्यक है। अत व्यक्ति को केवल लोहा या नीलम पहिनने का आदेश देना चाहिये।

कु० स० ७
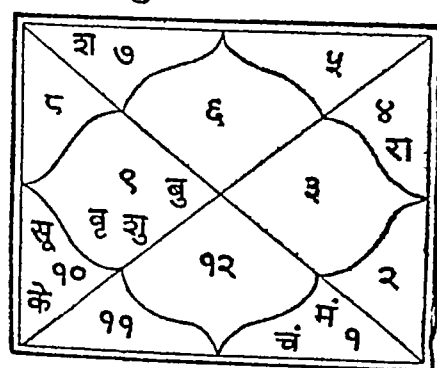
(३०) एक और कुण्डली स ७ लीजिये इस व्यक्ति को फेफडो का क्षय (T B. of Lungs) हो गया था। देखिये चतुर्थ भाव तथा उसके स्वामी (फेफडों के प्रतिनिधि) चतुर्थ राशि तथा उसके स्वामी (पुन फेफडो के प्रतिनिधि), चन्द्र—सभी पर शनि की पूर्ण दृष्टि अर्थात् प्रभाव है और शनि यहाँ षष्ठेश होने के कारण तथा केतु-अधिष्टित राशि का स्वामी होने के कारण, रोग का और भी अधिक प्रतिनिधित्व करता है। अत अपनी दृष्टि द्वारा यह शनि बहुत व्यापक अनिष्ट की उत्पत्ति "काल पुरुष" के नम्बर ४ के अङ्ग—फेफडो (Lungs) में कर रहा है। यहा चूँकि गुरु तथा चन्द्र फेफड़ो के प्रतिनिधि होकर पीडित है, अत उनका बलवान् किया जाना अपेक्षित होगा। इस दशा मे '**पुखराज**" तथा "**मोती**" पहिनने से रोग की शान्ति मे सहायता मिलेगी।

(३१) जब कोई ग्रह **त्रिक** (अनिष्ट) भाव मे विना किसी शुभ युति अथवा दृष्टि के पडा हो तो वह ग्रह अपने "धातु" सबधित रोग को देने वाला होता है। निम्नलिखित कुण्डली स० ८ मे चन्द्र की ऐसी ही स्थिति है। चन्द्र की इस अनिष्ट स्थिति के कारण चन्द्र की धातु अर्थात् रक्त (Blood) सम्बन्धी दोष अथवा रोग कहना चाहिये। ऐसी स्थिति मे चन्द्र का बलवान् करना आवश्यक होता है। **चन्द्र** को **चान्दी** की अगूठी मे **मोती** पहिन कर बलवान् किया जाय जिस से रक्तदोष के शान्त होने मे सहायता मिले।

कु० स० ८

(३२) इसी प्रकार की अनिष्ट स्थिति यदि मङ्गल ग्रह की हो, जैसा कि यहा कुण्डली स० ९ मे है, तो **सूखे** (Atrophy of muscles) **के रोग की** सभावना रहती है। इस रोग के निवारणार्थ **मङ्गल** को **मूँगा** पहिन कर अथवा पहिनवा कर बलवान् करना चाहिये।

कु० स० ९
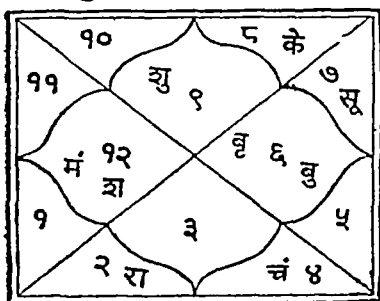
जिन व्यक्तियो को किसी मानसिक रोग जैसे **पागलपन** आदि की सभावना हो उनकी कुण्डली मे **बुध तथा चन्द्र** अवश्य निर्बल स्थिति मे होते है। अत अन्य बातो के अतिरिक्त **बुध तथा चन्द्र** का बलवान् किया जाना अनिवार्य होता है। बुध बुद्धि का ग्रह है और चन्द्र भावनाओ का स्पष्ट है कि ऐसे रोग मे मस्तिष्क तथा भावनाओ—दोनो—का बिगाड होता है। **बुध तथा चन्द्र** को बलवान् करने के लिये **पन्ना** तथा **मोती** पहिनने का नियम है ही। इस प्रकार ज्योतिष मे रत्नो के धारण करने से रोगो की शान्ति मे भी सहायता ली जाती है। और लेनी चाहिये।

नव रत्नों का परिचय

सूर्य रत्न--माणिक्य (लाल)

१

सर्वोत्कृष्ट माणिक्य बर्मा का; भारत में माणिक्य की नयी खान; धधकते कोयले-सरीखी ललक; एक में दो रंग; षट्कोण तथा द्वादशकोण तारा; अंधेरे में चमकना; वात, पित्त कफ़—तीनों का शामक, बुद्धि वर्धक; उदर रोगों का शत्रु; क्षयरोग का घातक; विपदा का पूर्व सूचक ।

विविध नाम **संस्कृत**—माणिक्य, पद्मराग, लोहित, शोणरत्न, रविरत्न, शोणोपल, कुरुविन्द, सौगन्धिक, वसुरत्न आदि अनेक। **हिन्दी-पंजाबी**—चुन्नी । **अंग्रेजी**—Ruby **उर्दू-फारसी**—याकूत ।

भौतिक गुण – कठोरता—९; आपेक्षिक घनता—४ ०३; वर्तनाक १.७१६—१ ७७; दुहरावर्तन ० ००८; द्विवर्णिता तीव्र; रासायनिक रचना—एल्यूमिनयम ऑक्साइड।

कुरुन्दम समूह—कठोरता में हीरे के बाद कुरुन्दम समूह के रत्नों का स्थान है। इस समूह के लाल, नीलम तथा एमेरो आदि रत्नपदार्थ प्राचीनकाल से जाने-पहचाने चले आ रहे है। खनिज विज्ञान की नयी खोज के अनुसार ये सब एक ही प्रकार के तत्त्वों

से मिलकर बने है—एल्यूमिनियम तथा ऑक्सिजन इनके मूल तत्त्व है। लाल और नीलम के सिवा इस समूह में दूसरे भी ऐसे रत्न है जो अपने चटकीले रगो के कारण प्रसिद्ध है। परन्तु माणिक्य की जगमगाहट अपने स्थान पर है तो नीलम का नीला रग अपनी आन-बान के लिये प्रसिद्ध है। रगरहित कुरुन्दम का श्वेत नीलम; हरे का हरा नीलम, अथवा प्राच्य पन्ना, बैंजनी का बैंजनी नीलम आदि नाम नीलम और पन्ना नामो के मान के सूचक हैं। माणिक्य (लाल) तथा नीलम के अतिरिक्त शेष सभी रगदार कुरुन्दमो का एक नाम 'चटकीले नीलम' भी प्रसिद्ध है।

कुछ ऐतिहासिक तथ्य—(१) मणिक्य की खाने बर्मा मे सदियो से ज्ञात है। सर्वोत्तम मणिक्य उत्तरी बर्मा के मोगोक जिले से प्राप्त हुए है। इस जिले मे एक बहुत लम्बा-चौड़ा प्रदेश मणिक्यो का घर है। परन्तु इसमे से बहुत थोडा क्षेत्र ही ऐसा है कि जिससे मणिक्य निकाले जा सके है। शुरू मे इन पर वहा के राजाओ का ही एकाधिकार था। कहते हैं कि बर्मा के एक चतुर राजाने इस बहुमूल्य प्रदेश को एक महत्त्वहीन बस्ती के बदले पडोस के चीनी शाम लोगो से लिया था। मणिक्य खोदने का काम काफी कठिन था, इसलिये यह काम उन कैदियो से लिया जाता था कि जिन्हे राजा अनचाही प्रजा समझ लेता था।

आगे चलकर मणिक्य खोदने के लिये लाइसेन्स देने की पद्धति जारी की गयी। इन खनिजो के बदले मे कुछ धन तो देना ही पडता था परन्तु जिन मणिक्यो का मूल्य २००० रु० से अधिक आका जाता था, वे भी राजा ले लेता था। यहा से बडे रत्न कभी-कभी ही मिलते थे—परन्तु ऊपर लिखे नियम के कारण यह भ्रम भी फैला कि खनिक लोग बडे रत्नो को तोड डालते है। सन् १८८५ ई० मे बर्मा अग्रेजो के अधिकार मे आ गया और अब इन खानो का काम रूबी माइन्स लि० नाम की अग्रेजी कम्पनी करने लगी।

पुराने समय मे मिले बढिया मणिक्य बर्मा के राजवश के पास ही रहे। १८७५ में बर्मा के राजा ने धनाभाव से बाधित होकर दो बढिया लाल बेचे थे ; इनमें से एक ३७ कैरट तथा दूसरा ४७ कैरेट था। बाद मे ये लन्दन में काटे गये। और अब वे क्रमश. ३२ ३ तथा ३८ ६ कैरट रह गये—जो क्रमश दस तथा २० हजार पौड में बिके। बर्मा में एक बार ४०० कैरेट भार का भी लाल मिला था। इस के तीन टुकडे किये गये— दो को तो साज-संवार कर ७० तथा ४५ कैरट के नग बनाये गये और तीसरा टुकडा अपने मूलरूप में ही कलकत्ते मे ७ लाख रुपयो मे बिका। कम्पनी के अधिकार के काल में भी एक बार १८ ५ कैरेट का बढिया मणिक्य मिला था जो कट कर ११ कैरेट का रह गया और फिर ७ हजार पौड में बिका। एक ७७ कैरट का मणिक्य १८९९ में मिला जो भारत में १९०४ मे चार लाख रुपयो में बिका। १८९० में २०४ कैरेट तोल का एक मणिक्य बर्मा की खानो से निकला था।

रूस के पहले के शाही ताज में एक काफी बडा माणिक्य था जो १७७७ ई० में रूस की रानी कैथेराइन को भेट में मिला था। अ ग्रेजी ताज में भी एक बडा लाल रग का रत्न है जिस को पहले मणिक्य समझा जाता रहा था। परन्तु, वह वस्तुत. लाल कटकिज (स्पाइनेल) है और मणिक्य इस कारण समझ लिया गया था कि ये दोनो खनिज रत्न ककडो के साथ पाये जाते है।

१९०८ ई० में सश्लिष्ट (अल्यूमिनयम और ऑक्सिजन तत्त्वो को कृत्रिम ढग से सश्लेषितकर बनाये गये) माणिक्य बाजार में आ गये। इनका मूल्य प्राकृतिक माणिक्यों की तुलना में नही के बराबर है, एक बढिया सच्चे माणिक्य का मोल जब कि ५०० पौड प्रति कैरेट हो तो, सश्लिष्ट माणिक्य उसकी तुलना में केवल २शि०. प्रति करेट ही रहेगा।

प्राप्ति स्रोत—सबसे अधिक मूल्यवान् माणिक्य ऐसे पहाडों में

पाये जाते है कि जिनमे 'ग्रेनाइट' (तामडा या रक्तमणि), ग्नीज (अभ्रक की जैसी परतदार) और काचमणि या बिल्लौर (क्वार्ट्ज) की चट्टाने हो। भारत मे काश्मीर रियासत मे ऐसी चट्टाने पायी जाती है। प्रसिद्ध घुमक्कड लेखक श्री सूफी लछमन प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'रत्नावली' (उर्दू) मे लिखा है कि मैने ऐसी चट्टाने हिमालय पर्वत के बहुत से स्थानो पर देखी है। उनकी सम्मति मे भारत के साहसी युवको को इन्हे प्रकाश में लाकर अतुल ऐश्वर्य उपार्जित करना चाहिये।

ऐसे ही स्थानो पर कटकिजमणि (स्पाईनेल) भी अपने अनेक विभेदो—माणिक्य कटकिज-मणि, बैलास रूबी, रूवी सेल आदि—मे मिलती है। इन मे से बैलास रूबी रत्नो की श्रेणी मे गिना जाता है। काफी कठोर होने के कारण यह एक टिकाऊ रत्न है और अधिकतर अगूठियो मे जडा जाता है। रोम निवासियो ने मणिक्य को भी, सम्भवत इसके जाज्वल्यमान रग के कारण, एकसा समझा और स्पाइनेल तथा तामडा के साथ माणिक्य की गिनती की। इन सभी कठोर पदार्थो को रोमन लोग कार्बुक्लस तथा यूनानी 'ऐथैक्स' कहते थे—इन दोनो का एक ही अर्थ 'चिनगारी' है।

स्पाइनल मणि भी देखने मे मणिक्य जैसी लगती है। परन्तु अपनी कठोरता, आपेक्षिक घनत्व, तथा अन्य गुणो मे यह माणिक्य से वहुत भिन्न है। इसको लाल और नीलम काट सकते है। इसकी चमक बिल्लौरी होती है। इस के भीतर से परावर्तित प्रकाश पीली आभा लिये आता है। अनजान लोग मणिक्य के धोखे मे कटकिज मणि खरीद लेते है। असली माणिक्य की परख के लिये आगे देखिये।

विविध खानो के माणिक्य—(१) यह ऊपर कहा जा चुका है कि उत्कृष्ट माणिक्य (लाल) बर्मा से प्राप्त होता है। यहाँ के माणिक्य का रग गुलाब की पत्ती के रग से ले कर गहरे लाल रग तक का होता है।

(२) स्याम देश की खानों से प्राप्त उज्ज्वल से उज्ज्वल माणिक्य भी बर्मा के माणिक्य की अपेक्षा अधिक कालापन लिये होता है। स्याम के माणिक्य में तारे की-सी झिलमिलाहट (तारकितता) नही उत्पन्न की जा सकती।

(३) श्री लका के माणिक्य में बर्मा के माणिक्यकी अपेक्षा पानी अधिक और लोच कम होता है। ये पीले और चितकबरे मिलते है।

(४) काबुल के माणिक्य में पानी (मोटा), और चुरचुरापन होता है। इसका रग सुन्दर होता है। कोई-कोई माणिक्य बर्मा के माणिक्य से भी अधिक सुन्दर निकल आता है।

(५) टैंगानिका (अफ्रीका) का माणिक्य बहुत चुरचुरा होता है। इसमें लाल रग के साथ-साथ श्याम आभा तो होती ही है, परन्तु किसी-किसी खण्ड में पीले रग की आभा भी होती है; जिससे यह रक्त-पीत दीखने लगता है। यह पीत आभा ही स्याम देश के माणिक्य को इससे भिन्न बतलाती है।

(६) दक्षिण भारत के कागियन्न स्थान पर माणिक्य की एक नयी खान चालू हुई है। यह **कांगियन माणिक्य** अपारदर्शक, श्याम-नील आभा से युक्त, मैलासा और नरमसा होता है। काटने पर पतले-पतले टुकडे हो जाने पर इसमें पानी दीखने लगता है।

फेरुकृत रत्न परीक्षा में—१ पद्मराग, २ सौगधिक, ३ नीलगन्धि, ४ कुरुविंदी, और ५ जामुनिया—माणिक्य की ये पांच जातियाँ बतायी है। उसके अनुसार **पद्मराग**—सूर्य की भाति किरणें फैलाता है; वह खूब चिकना, कोमल, अग्नि जैसा, तपे हुए सोने-जैसा और अक्षीण होता है। **सौगंधिक** वह कहलाता है जो किंशुक के फूल जैसा, कोयल--सारस व चकोर की आँख जैसा, अनारदाने के रंग का होता है। **नीलगंधि** कमल, आलता, मूँगा और ईगुर के समान कुछ-कुछ नीलाभ और खद्योत की काति वाला होता है। **कुरुविंद**

जाति का माणिक्य पद्मराग तथा सौगधिक जैसी प्रभावाला परन्तु परिमाण मे छोटा और पानीदार होता है। **जामुनिया** जामुन व लाल कनेर के फूल जैसे रग का होता है।

"आयुर्वेद प्रकाश' के अनुसार लाल कमल की पखुडियो की-सी दमक वाला, पारदर्शक, चिकना, बडा, सुडौल, अच्छे रग का, गोल, लम्बा माणिक्य श्रेष्ठ होता है।

फेरू की रत्नपरीक्षा मे अच्छे माणिक्य के गुण सुच्छाया, चिकनापन, लालकाति, कोमलता, भारीपन, सुडौलपन तथा बडा आकार, बताये है।

'रसरत्नसमुच्चय' मे माणिक्य की एक जाति का नाम 'नीलगन्धि' लिखा है—उसके अनुसार नीलगन्धि माणिक्य वाहर से लाल और भीतर से नीला (नीलगर्भकिरण) होता है।

एक अन्य प्राचीन लेखक के अनुसार श्रेष्ठ माणिक्य को दूर से देखने पर वह पिघली लाख के रग का, लाल कमल के रग का, कान्धारी अनार के दानो के रग का और पठानी लोध्र के ताजा खिले फूल की सी रगत का दीखता है। इसका लाल रग गुलाबी से लेकर बैंजनीपन लिये लाल रग तक पहुचता है। सबसे अच्छा माणिक्य कबूतर के खून जैसे वर्ण का होता है—इसमे बैंजनी आभा भी होती है।

माणिक्य के दोष—'आयुर्वेद प्रकाश' तथा अन्य प्रामाणिक स्रोतो के अनुसार, वह माणिक्य अशुभ अथवा दोष युक्त माना जाता है जो (१) चमक से रहित अथवा सुन्न हो; (२) शर्करिल अथवा वालू के रेत के कणो के समान किरकिरा हो; अथवा चुरचुरा (crisp) हो; (३) जो दूध जैसा हो (दूध का दोष), (४) धूसर अथवा मैले रग का हो; (५) या धुए के रग का हो; (६) जिस पर काला या सफेद दाग हो, (७) जो कम पारदर्शक (जठरा) हो; (८) शहद के रग का अथवा इस रग के छीटो वाला हो; (९) हलका हो;

(१०) विकृत हो (११) जिस पर चीर हों और (१२) जिस मे अभ्रक की परतें हों।

परन्तु यह भी सच है कि सर्वथा निर्दोष और बडे आकार के माणिक्य प्राय नही मिलते, इसलिये यदि किसी के पास अज्ञात **खान का कोई बड़ा और निर्मल माणिक्य दिखायी दे तो उसको पहले तो सदेह की दृष्टि से ही देखना चाहिये।**

विज्ञान द्वारा परीक्षित प्रकाशीय तथा भौतिक गुण रग—जैसा कि हम ऊपर कह आये है, रगीन पत्थरों में से कुरुन्दम समूह के पत्थर कई बातों मे सबसे अधिक महत्व रखते है। और साधारणजन तो इनमे से माणिक्य और नीलम से ही अधिक परिचित है--पन्ना ही एक मात्र वह दूसरा रगीन महारत्न है जिसे साधारण जनता खूब जानती है। कुरुन्दम जाति केवल गहरे लाल से लेकर जामनी-लाल रग तक के रत्न ही माणिक्य गिने जाते है; शेष सभी रगों वाले—हलके लाल तथा गुलाबी तक भी, नीलम कहलाते है।

द्विवर्णिता—बर्मा की लाल मणियों में तीव्र द्विवर्णिता पायी जाती है। यह दुहरा (युग्म) रग, हलका नारंजी-लाल तथा गहरा जामनी-सा लाल होता है। यह हम पहले ही बता आये है कि यह गुणखनिजो की भीतरी बनावट के कारण होता है। घनाकार तथा रवाहीन रचना वाले खनिजों मे द्विवर्णिता नही पायी जाती। न किसी रगरहित खनिज या रत्न मे यह गुण होता है। ऐसे खनिजों के भीतर से गुजरने वाली किरणें सब दिशाओं में एक ही वेग से चलती है। इन्हे समवर्तिक कहते हैं। **दुहरे वर्तन** के कारण माणिक्य में किनारे भी दुहरे दिखायी देते है।

माणिक्य का अपकिरणन—० ०१८ है, जो हीरे के अपकिरणन से बहुत कम है; इसी कारण माकिक्य तथा कुरुन्दम समूह के दूसरे रत्न हीरे से कम जाज्वल्यमान होते है। इसी लिये लाल और नीलम का मुख्य आकर्षण उनका अपना-अपना रग ही होता है।

कुरुन्दम समूह के रत्नो का **आपेक्षिक घनत्व** ३ ९५ से लेकर ४ ०५५ तक है। माणिक्य का ४ ०१ है। रासायनिक सरचना के अनुसार इस मे ऐल्यूमिनियम तथा ऑक्सीजन—ये दो ही तत्व है—दोनो का आ घ क्रमश २ ६ तथा ० ००१४ है, फिर भी इन दोनो से बने माणिक्य का आ घ ४ ०१ होना **एक पहेली** ही है।

बर्मा तथा लका के सुन्दर असली माणिक्य और सश्लिष्ट (कृत्रिम) माणिक्य पराबैंगनी किरणो मे ऐसे जगमगाते है कि मानो वे जल रहे हो। यदि असली और कृत्रिम को साथ-साथ रखकर देखा जाय तो बनावटी असली से भी अधिक चमकते है। यदि इस समय इसको अधेरे कमरे में ले जाया जाय तो यह और भी अधिक प्रतिदीप्त होता है। क्ष-किरणो मे भी दोनो ही चमकते हैं; हा; क्ष-किरण को हटा लेने पर भी कृत्रिम चमकता रहता है (विशेषतया अधेरे मे) परन्तु असली नही चमकता। कृत्रिम मे **स्फुरदीप्ति** का गुण हौता है, असली मे नही होता।

तारकितता—कुरुन्दम समूह के सभी अर्धपारदर्शक से लेकर पारभासी तक रत्नो को, जिनमे ऐसे लाल तथा नीलम भी, सम्मिलित हैं, जब काटकर उनका ऊपरी पृष्ठ उन्नतोदर बना दिया जाता है तो उसमे शिखर पर से झाँक कर देखने पर भीतर ६ तथा १२ कोनो के तारे दिखायी देते हैं। तारकितता का यह गुण असली माणिक्य की एक विशेष पहचान भी है।

असली नकली की परख—स्पष्ट है कि माणिक्य का भ्रम माणिक्य से मिलते-जुलते रत्नो मे ही सम्भव है। पहला भ्रम तो उन रत्नो मे होना सम्भव है कि जो असली है—रूप-रग आदि मे माणिक्य से मिलते हैं, परन्तु वास्तव मे माणिक्य नही है। असली माणिक्य-सरीखे लगने वाले रत्न निम्मलिखित है—कटकिज मणि (spinel) विक्रात, शोभामणि। मनुष्यकृत फिर दो प्रकार के हैं—एक तो काच और प्लास्टिक के बनाये हुए नकली अथवा अनुकृत

माणिक्य। और दूसरे वे जो ऐल्युमिनियम तथा ऑक्सीजन तत्वों को तथा उनमें रंजक (रंगने वाले) तत्वों को मिलाकर बनाये जाते हैं—अर्थात् सश्लिष्ट माणिक्य। और तीसरे-दो प्रकार के रत्नों को जोड़कर बनाये गये युग्मैक माणिक्य।

संश्लिष्ट माणिक्य—की रासायनिक व सरचना और रवे की आकृति तथा उसकी बनावट, असली रत्न जैसी ही होती हैं—इसीलिये उनके भौतिक गुण तथा प्रकाशीय विशेषताएँ भी एक-सी होती हैं। इसलिये इनमें अन्तर बताना कठिन रहता है। फिर भी नीचे लिखी परीक्षाएँ पर्याप्त निर्णायक रहती हैं—

(१) परख के लिये आये रत्न में **अन्तः प्रविष्ट वस्तुओं** अथवा **अंतरावेशों की आकृति**—संश्लिष्ट माणिक्य में गोल-गोल वायु से भरे बुलबुले होते है। ये उसमें प्राय. वक्ररेखा में स्थित होते हैं। प्राकृतिक माणिक्यों में ये नही होते। बनाने वाले वैज्ञानिक इस कोशिश में है कि ऐसे सश्लिष्ट पारदर्शक माणिक्य बनाये जायें कि जिनमें ये वायु-बुलबुले न हों।

यद्यपि प्राकृतिक या सच्चे माणिक्य के भीतर भी अन्तरावेश होते है—परन्तु ये सदा **नोकीले** (Angular) होते हैं। रेशम अर्थात् पतले, सूइयों सरीखे अन्तरावेशों का होना कुरुन्दम वर्ग के रत्नों की एक लाक्षणिक पहचान है।

(२) सश्लिष्ट माणिक्य के बनने की अवस्था में, उसके भीतर धारियॉ पड जाती है—जो वक्ररेखाओं के रूप में होती हैं—कोशिश यह भी की जा रही है कि ये रेखाये सश्लिष्ट माणिक्य में न बनने पावे। रेखाओं को देख पाने के लिये माणिक्य को मिथाइलीन आयोडाइड अथवा ब्रोमोफोर्म द्रव में डाल देते हैं। इनके वर्तनाक संश्लिष्ट रत्न के वर्तनांकके लगभग बराबर होते है। इसलिये द्रवमें डाल देने पर रत्न तो प्राय अदृश्य हो जाता है और अन्तरावेश स्पष्ट दिखायी देने लगते हैं। माणिक्य मे इनको देख लेना सरल सिद्ध होता है।

(३) बर्मा के माणिक्यो मे रग एक सार नही होता; सश्लिष्ट रत्नो का रग एकसार दिखायी देता है।

फिर निम्न बाते भी इस परख मे काम आ सकती हैं—

(१) सश्लिष्ट रत्न का मूल्य असली के मुकाबले मे बहुत ही कम होता है, इसलिये इसको बनाने मे मनुष्य सतर्क नही रहता। रगडकर चमकाते समय उत्पन्न ताप पहलो के जुडने के स्थानो को प्राय चटका देता है।

(२) अनुकृत (कॉच) या इमिटेशन माणिक्य को नेत्र पररख ने पर गरम लगता है, असली ठढा।

(३) हाथ मे लेने पर असली, इमिटेशन की अपेक्षा भारी लगता है—असली का आ घ (दडक) अधिक होती है।

(४) चीर होगी तो वह नकली मे काच की भाति चमकदार तथा टेढी-मेढी होगी।

(५) माणिक्य से मिलते-जुलते रत्नो—कटकिज, विक्रात तथा काच की अनुकृतियो और साधारण युग्मैक रत्नो मे द्विवर्णिता जरा भी नही होती—जबकि असली माणिक्य मे तीव्र द्विवर्णिता होती है। शोभामणि मे द्विवर्णिता होती है परन्तु उसका लाल रग माणिक्य के लाल रग से नही मिलता। लाल कटकिज का रग भी असली मणिक्य के रग से मेल नही खाता—इसका रग ई ट के रग सा अथवा नारगी रग के समान होता है। फिर कटकिज मे द्विर्वणिता भी नही है।

चिकित्सा में प्रयोग—आयुर्वेद शास्त्रो में कहा गया है कि **'माणिक्य दीपनं वृष्यं कफवातक्षयार्तिनुत्'** अर्थात् चिकित्सार्थ रत्नों का प्रयोग करने मे निपुण वैद्यजन माणिक्य को मधुर, चिकना, वात-पित्त का नाशक तथा उदर रोगो मे लाभकारी बताते है। चुन्नी-भस्म दीर्घ आयुष्य प्रदान करती है, वात, पित्त तथा कफ—इन तीनों रक्षक तत्त्वो को शान्त करती है; क्षयरोग, उदरशूल, फोडा, घाव,

विष क्रिया, चक्षुरोग तथा कोष्ठबद्धता को दूर करती है।

वर्णचिकित्सा के आधार पर चुन्नी का प्रयोग, नियमानुसार बनायी गयी माणिक्य-गोलियों के द्वारा किया जाता है। माणिक्य: गोलियाँ पीलिया, रक्त प्रवाह की अपूर्णता, क्षय रोग, दुर्बलता, हर्निया, बुद्धिहीनता, लकवा आदि रोगों को शान्त करती है।

दिव्यशक्ति—प्राचीन काल से ही माणिक्य का माहाम्त्य बखान किया जाता रहा है। युनानी समझते थे कि माणिक्य धारण करने वाले पर विष का असर नही होता, यह प्लेग से बचाता है; शोक को भगाता है, विलास-वैभव के दुष्प्रभावो को दूर करता है और मनुष्य के मन को बुराइयो मे नही भटकने देता। कहते है कि अरागॉन की कैथेराइन को जव तलाक दिया जाने लगा तो उसके माणिक्य (जो उसने पहना हुआ था) का रग वदल गया था।

कौन धारण करे ?—माणिक्य सूर्य का रत्न है। यदि किसी के जन्म के समय सूर्य अनिप्टकारी हो तो उसके अनिष्ट को दूर करने के लिये माणिक्य धारण करना चाहिये। सूर्य का प्रभाव उसकी सिह राशि में माना गया है - अर्थात् १५ अगस्त से १४ सितम्ब्रर तक उत्पन्न व्यक्तियो को माणिक्य धारण करने से इसका लाभ मिलताहै।

धारण विधि—कम से कम ३ रत्ती का माणिक्य अपने जन्म मास की १, १०, १९ और २८ वी तारीख में तथा रविवार को अथवा अन्य मित्र-महीनों—जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, अगस्त, सितम्वर, अक्तूवर तथा दिसम्वर—में धारण करना चाहिये। इसके धारण करने का मत्र निम्नलिखित बताया गया है—

'आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृत मर्त्यञ्च।
हिरण्येन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

वदल—माणिक्य हीरे से भी अधिक मूल्य का रत्न है। कभी-कभी तो इसका मूल्य हीरे से तिगुना हो जाता है। इसलिये जो लोग

इसको नहीं खरीद सकें वे कंटकिज (spinel) अथवा तामडा (garnet) धारण कर सकते हैं।

चन्द्र रत्न मोती

: २ :

घोघे का पाला-पोसा अनुपम रत्न; सतरगी मुक्ताभा; सीप में मोती बढ़ने की प्रक्रिया; मानव द्वारा की गयी अद्‌भुत नकल; असली-नकली में पहचान ; हृदय को बलदायक; स्मरणशक्ति का वर्धक; लाज-लावण्य आदि स्त्री-गुणों का वर्धक।

विविध नाम : संस्कृत—मुक्ता, मौक्तिक, शुक्तिज, इन्दुरत्न,, **हिन्दी-पंजाबी**-मोती; **उर्दू-फारसी**-मुरवारीद, **अंग्रेजी** Pearl।

भौतिक गुण—जैविक रचना; रासायनिक तत्त्व-कैल्शियम कार्बोनिट; **आपेक्षिक घनत्व** २ ६५ या २ ६६ से लेकर २ ८४ या २ ८६ तक। **कठोरता**—३ ५–४ मोतियो के भीतर परतो की स्थिति लगभग समकेन्द्रिक तथा समान्तर, अपारदर्शक।

कदली, सीप, भुजगमुख स्वाति एक गुण तीन।
जैसी सगति बैठिये, तैसोई फल दीन ॥

स्वाति नक्षत्र के उदय रहते बरसी बूंद जब घोघे के खुले मुँह में समाती है तब वह **मोती** बन जाती है, वही बूंद केले मे जाकर कपूर और साप के मुँह में पड़कर हलाहल विष बन जाती है। हमारे साहित्यिक तथा सन्तजन न जाने कब से सगति के प्रभाव को समझाने मे स्वाति-बूंद का यह उदाहरण देते आये है। खारे समुद्र

के वासी घोघे के पेट में मोती बनता है—यह कहावत इस तथ्य को तो सुझाती ही है, पर साथ ही यह भी बताती है कि घोघे के पेट में मोती सदा ही नही बनता—उसके बनने की भी एक खास घड़ी ही होती है। कब स्वाती नक्षत्र के उदय रहते पानी बरसेगा और कब घोघे का मुँह खुलेगा कि उसमें वह बूंद समाये और मोती बनाये। बेचारे गोताखोर, बच्चे और ७० वर्ष तक के बूढे गोताखोर, भी गोते लगा-लगा कर थक कर चकनाचूर हो जाते है; वे समुद्र की तलहटी में से हजारो सीपें निकालकर उन्हे खोलते है–पर क्या सभी में से मोती निकलता है? नही, कदापि नही। सन् १६४७ में एक नौका ने ३५००० सीपे एकत्रित की परन्तु उनमें से केवल २१ मोती निकले; इन २१ में से भी केवल तीन ही रत्न थे।

हम पहले बता आये है कि मानव ने 'रत्न' नाम उस पदार्थ को दिया है जिसमें तीन गुण अवश्य हो—सौन्दर्य, टिकाऊपन और दुर्लभता। ये तीन गुण किसी रत्न में कम, किसी में अधिक पाये जाते है; पर पाये अवश्य जाते हैं। घोघे के पेट में उत्पन्न होकर पालित-पोषित 'मोती' सुन्दर होने के साथ-साथ कितना दुर्लभ है, यह बात इसकी जन्म कथा से भली-भाति स्पष्ट हो जाती है।

आज के वैज्ञानिक भला इस बात को क्यो मानने लगे कि मोती का जन्म **अचानक** होता है। परन्तु इसकी दुर्लभता तो आंखों से साफ दिखायी दे रही थी। वैज्ञानिकों की कल्पना है कि घोघे के पेट में कभी-कभी कोई विजातीय पदार्थ अचानक जा पैठता है वह उसकी चुभन को अनुभव करता है; उसे निकालने की पूरी कोशिश करता है; कभी-कभी सफल भी हो जाता है; परन्तु जब सफल नही हो पाता तो उसको अपने ही अंगो से निकाले गये एक पदार्थ की तहे चढा-चढा कर ऐसा चिकना बना लेता है कि फिर उसको वह वस्तु चुभती नही; पीड़ा नही पहुँचाती। घोघे की सीप को खोल-

कर देखने वाले गोताखोर की आखो को चौंधिया देने वाला यही पदार्थ तो '**मोती**' है। घोंघे के पेट में जा पैठने वाला विजातीय पदार्थ ककड का कोई कण, दूसरे पर पलने वाला कोई छोटा कीडा, सीग-सा कठोर कोई अकार्बनिक पदार्थ, कोई भी होना सम्भव है। परन्तु यह बडे आश्चर्य की बात है कि वैज्ञानिको ने मोतियो को काट कर देखा है—परन्तु उन्हे आज तक भी कभी कोई ऐसा पदार्थ मोती मे से मिला नही है। 'आयुर्वेद प्रकाश' के टीकाकार का यह लिखना असगत प्रतीत नही होता कि "शुक्ति के ढक्कन और कीट (घोंघे) की त्वचा के बीच स्वाती नक्षत्र के जल-विन्दु जाने की कहावत और शास्त्रीय आधार अनन्तकाल से सुना जाता है और यह सत्य भी है। स्वाती नक्षत्र मे बरसे जल-बिन्दुओ के प्रविष्ट होने से निर्मित मोतियो की आभा और आकृति सर्वोत्तम होती होगी यह निर्विवाद है।

अब आप यह ध्यान मे लाने का यत्न कीजिये कि मोती कैसा होता है। मधुमक्खियो का छत्ता मधुकोष तो आपने देखा होगा, मधुछत्ता छ भुजाओ वाले मधु से भरे कोषो अथवा थैलियो का एक जाल होता है; सच्चे मोती का भी एक ढाचा होता है—मोती बहुत ही महीन, समान्तर पक्तियो मे क्रम से स्थापित, परतो का बना एक गोला होता है; इसकी प्रत्येक परत मे अनेक थैलियो की एक सुकुमार झिल्ली युक्त जाली होती है—इस जाली का ढाचा 'कोनचायोलिन'—(Conchiolin) नामक एक सीग-सरीखे पदार्थ का बना हुआ होता है। ढाचे के बीच का खाली स्थान 'ऐरेगोनाइट' (Aragonite) नाम के पदार्थ के छोटे-छोटे रवो से भर जाता है; 'ऐरेगोनाइट' कैल्सियम कार्बोनेट (Calcium Carbonate—चूने का कार्बोनेट) का एक रूप है। सच्चे मोतियो का यह ढाचा इतना सूक्ष्म होता है कि शक्तिशाली सूक्ष्म दर्शक यत्र से भी नही

दिखायी देता। ऐरेगोनाइट के ये कोष मोती की प्रत्येक परत पर लम्बरूप में सीधे, और नियमित रूप से लगे रहते है अर्थात् जिस दिशा में पहिये के नाभि चक्र से निकलते हुए आरे लगे हुए होते है—वैसे ही ये छोटे-छोटे रवे मोती के केन्द्र से बिखरे हुए रहते हैं।

यदि किसी ने सच्चा मोती न भी देखा हो तो सामान्य सीपिया तो देखी ही होंगी। यह सीपी घोंघे का घर, कहिये अथवा उसका रक्षक कवच, होता है। सीपी को भीतर से देखिये—यह इन्द्रधनुप के समान सतरगी चमक देती है। यह सतरगी चमक ही विशेष रूप से उत्कृष्ट होकर सीप मे से मोती के चुरने का कारण बनती है। अभिप्राय यह है कि सीप का भीतरी अस्तर जिस पदार्थ का बना हुआ होता है, मोती की तहे भी उसी पदार्थ से बनती है। इसी पदाथ का नाम 'नेकर' (Nacre) या 'मुक्ता-माता (Mother of Pearl) है। इस प्रकार सच्चा मोती चादी सी चमकवाला, एक केन्द्र के चारो ओर (सकेन्द्रिक) समान्तर पर अवस्थित उक्त 'नेकर' की हजारो तहो का बना एक ठोस पदार्थ होता है। ये हजारो तहे कभी एक-साथ नही बनती, रुक-रुक कर जमती है; इस लिये इन पतली-पतली तहो के सगम स्थान से प्रकाश की गति रुकती है—उसकी गति में बाधा पडती है—इसका परिणाम यह है कि इस अपारदर्शी ठोस पदार्थ (सच्चे मोती) की इन सूक्ष्म परतो से टकराकर दर्शक की आखो में आयी किरणें एक विशेष प्रकार की झिलमिल उत्पन्न कर देती है। मोती की यह विशेष चमक मौक्तिक आभा अथवा 'प्राच्य' (Orient) आभा कहलाती है। मोती की उत्कृष्टता इसी आभा पर निर्भर करती है।

विचित्र किन्तु सत्य—देखी आपने प्रकृति की विचित्रता और दुर्बोध्यता ! इसी को भगवान् की लीला भी कह सकते है। वैज्ञानिक बताते है कि ई धन के काम में आने वाला कोयला अथवा कार्बन पदार्थ और पैंसिल वाला सीसा ही शुद्ध रूप कार्बन हीरा होता

है। और ६० प्रतिशत चूने के कार्बोनेट का बना मोती, सेलखडी से, चाक से , मूंगे, सगमरमर तथा शख से कितना भिन्न है। ये सभी पदार्थ एक ही जाति के है, फिर भी इनके सामान्य भौतिक, रासायनिक प्रकाशीय, औषधीय गुणो और प्रभावो मे महान् अन्तर है। यह सारा अन्तर इनकी सरचना, आकृति एव जन्म स्रोत की विभिन्नता से ही तो है।

ससार भर के साहित्य मे प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद मे मोती का 'कृशन' नाम आया है। पिपरावा के स्तूप से प्राप्त शाक्यमुनि के अवशेषो मे मोतियो के दानें मिले हैं। सस्कृत साहित्य के साहित्यिक, आयुर्वेदिक तथा ज्योतिष के ग्रन्थो मे मुक्ता (मोती), मैक्तिक-हार, मुक्ता-जाल आदि का विस्तृत विवरण मिलता है। रोम के निवासी मोतियो का विशेष आदर करते थे—वहॉ विशेष पदाधिकारी व प्रतिष्ठित व्यक्तियो को मोती धारण करने का अधिकार प्राप्त था। प्लिनी के लेखानुसार मोती ससार का सबसे अधिक मूल्यवान् पण्य पदार्थ था , और भारतीय, हीरे के बाद मोती को ही सब से अधिक मूल्यवान् समझते थे।

सीप का मोती—सच्चा मोती तो आजकल ैज्ञानिको की दृष्टि मे भी वही होता है जो घोघे के पेट में की झिल्लीदार थैली (cyst) में बनता है। मुक्ता माता (Nacre नेकर) के बनें इस मोती की थैली घोघे के कठोर बाह्य आवरण (shell) से चिपकी नही रहती इसलिये यह निर्बाध रूप से थैली मे लुढकता-पुढकता पूरा गोल हो जाता है अथवा नाशपाती के आकार का बन जाता है।

वैज्ञानिको का कथन है कि कभी-कभी घोघे के भीतर घुसनें वाला विजातीय पदार्थ, रेत का कण अथवा कीट आदि, घोघे के ऊपर वाले सख्त आवरण (Shell) तथा उसकी भीतरी त्वचा अथवा आवरण (Mantle) के मध्य रह जाता है—उसके शरीर के

नरम गुदगुदे उदर भाग में नही पहुँच पाता। इस अवस्था में भी मोती बनता है परन्तु वह सीप से चिपका रहने के कारण निर्बाधगति से लुढक-पुढक नही पाता और पूरा गोल नही बन पाता—ऐसा मोती चपटा और बेडौल रह जाता है। इन्हे अंग्रेजी मे 'बैरौक' (Baroque) अथवा 'छाला' (Bltıster) मोती भी कहते है।

ध्यान रखिए—खाने योग्य घोंघे के पेट में से भी एक सख्त गोली-सा पदार्थ मिलता है—यह प्राय काला और चमक-रहित होता है। यह मोती नही है। फिर सच्चा मोती तो प्राय खारे समुद्रजल की सीपो से ही मिलता है; नदी, झील आदि के मीठे जल की सीपी के मध्य भाग से मिलने वाला मोती सच्चा मोती नही होता; उसमे मुक्ता-माता अथवा मौक्तिक पदार्थ (Nacre नेकर) ही नही होता। शखो से मिलने वाले मोती भी ऐसे ही होते हैं। इनमे मुक्तामाता की एक दूसरे से मिली सकेन्द्रिक तहें ही नही होती; इसलिये इनमें मौक्तिक आभा का भी अभाव रहता है।

परन्तु कभी-कभी शखो मे निर्मित मोती गुलाबी रग के और बड सुन्दर निकलते हैं—वे पर्याप्त मूल्य के होते है इनकी सतह पर से आग की-सी लौ उठती दिखायी देती है (रिचार्ड टी लिड्डिकोट, कनिष्ठ)। सन् १८५७ में पेटसन स्थान के समीप से लगभग ९३ ग्राम का एक ऐसा ही सुन्दर मोती मिला था और उसका नाम 'क्वीन'—'मुक्तारानी' रखा गया था।

श्रेष्ठ मोती के गुण—आधुनिक वैज्ञानिक सच्चे मोती के दो गुण गिनते है—**पहला** इसकी विशेष चमक अथवा विशेष उज्ज्वल, मौक्तिक अथवा प्राच्य (orıent) आभा और **दूसरा** इसके ऊपरी तल पर सुकुमार (मनोरम) सतरगी (इन्द्रधनुषी) अभिनय।

भारतीय साहित्य में उत्तम मोती वह बताया है कि जिसको देखते ही मन प्रसन्न हो उठे (ह्लादि), जिसका रग श्वेत हो, जो हल्का

हो जिसका गुरुत्व अधिक न हो, चिकना हो; चन्द्रमा की किरण के समान निर्मल हो, बडा हो; जल के तुल्य परछाई उत्पन्न करने वाला और गोल (सुडौल) हो। श्रेष्ठ मोती के ये नौ गुण हैं (आयुर्वेद प्रकाश' अ० ५ श्लोक ६४)

एक अन्य प्राचीनग्रन्थमे उत्तम मोतीके निम्न गुण लिखे है —

सुतारं च सुवृत्तं च, स्वच्छं च, निर्मल तथा।
घनं, स्निग्ध सुच्छाय तथा (अ) स्फुटितमेव च ॥

इनको खूब मन मे बैठा लीजिये—इस श्लोक के अनुसार श्रेष्ठ मोती तारे की-सी दीप्ति बिखेरता है (सुतारम्); वह पूरा-पूरा गोल होता है (सुवृत्तम्); स्वच्छ, अत्यन्त शुचि और मल-रहित होता है, ठोस होता है, चिकना होता है; उसमे छाया (परछाई) पडती है और अस्फुटित अर्थात् कही भी चोट खाया नही होता है, उस पर किसी प्रकार की रेखायें नही होती। 'छायास्तु त्रिविधा स्मृता मधु-सिता-श्रीखण्ड-खण्डश्रिय — आयुर्वेदप्रकाशकार का कहना है कि श्रेष्ठ मोती मे झाई तीन प्रकार की, शहद, मिश्री तथा चन्दन के टुकडे सरीखी, होती है।

मोती के दोष—मोतियो के अनेक प्रकार के दोष गिनाये गये हैं—इनमे से कुछ को 'बडा' और कुछ को 'छोटा' दोष भी कहा गया है। आजकल के जौहरियो के अनुसार इन दोषो की गिनती इस प्रकार है —

(१) ऊपरी तल पर दरार अर्थात् **गरज** होना अथ ा मोती का फटा हुआ होना।

(२) सतह पर बारीक रेखाओ अथवा **लहरो** का होना।

(३) मोती के चारो ओर वलयाकार रेखा का होना—ऐसा प्रतीत होना कि दो टुकडे-जुडे हुए हो; अर्थात् **गिडली**।

(४) मोती का **मस्से** जैसा होना।

(५) मोती का **रूखा** अर्थात् चमकरहित होना ।
(६) चोभा (चेचक के दाग के समान);
(७) छाले जैसा; और
(८) धब्बा होना ।
(९) मोती **मटिया** हो अर्थात् उसके भीतर मिट्टी हो ।
(१०) **स्यानी** अथवा **मगज** मोती होना । ऐसे मोतियों का मध्य भाग काठ के समान और ऊपरी सतह झिल्ली के समान झीनी होती है । यह मोती सरलता से बिंध जाते हैं—इन पर परतें कम होती हैं—इस कारण झीनी झिल्ली पर श्याम (काली) आभा होती है । इनमें कैल्शियम पदार्थ, मुक्तामाता पदार्थ, नहीं होता ।

सीपी को छोड़ कर अन्य पदार्थों में उत्पन्न मोती–प्राचीन शास्त्रों के अनुसार मोती सीपी के अतिरिक्त दूसरे पदार्थों से भी मिलता है; इनके नाम हैं—१ हाथी का गण्डस्थल, २ शंख, ३ मछली, ४ सूअर, ५ बाँस, ६ सर्प का मस्तिष्क, और ७ बादल । गज आदि से उत्पन्न मोतियों के लक्षण इन प्राचीन शास्त्रों में बताये हैं—परन्तु साथ ही यह भी कह दिया है कि ये मनुष्यों को कभी प्राप्त नहीं होते । मेघ से उत्पन्न मोती को तो देवता लोग आकाश में ही पकड़ लेते हैं । शास्त्रों में इनको इतना पवित्र माना गया है कि ये बींधने के अयोग्य माने गये हैं । आजकल केवल सीपी से निकले मोतियों का ही प्रचलन है और उनके गुण हम ऊपर लिख आये हैं । हां, शंख मोती को गरुड पुराण में चन्द्रमा के समान कांतिवाला, गोल और चमकीला बताया है । अलाउद्दीन के कोषगाराध्यक्ष मन्त्री ठक्कुर फेरू द्वारा रचित 'रत्न परीक्षा' के अनुसार यह सफेद, हल्का और अगुण होता है । 'आरोग्यप्रकाश' में इसको शुक्र तारे के समान कांतिवाला बताया है । 'चाणक्य' ने भी अर्थशास्त्र में शुक्ति के साथ शंख को मोती की योनि बताया है–मोती की शेष योनियों को उसने

महत्त्व नही दिया है। आजकल के वैज्ञानिक भी शख-मोतीका अस्तित्व मानते है। वे कहते है कि 'शख के भीतर हलके नारगी-लाल अथवा गुलाबी रग के ठोस पदार्थ बन जाते है, यद्यपि वे मुक्ता-माता अथवा मुक्ता बनने वाले पदार्थ से रहित होते हैं। इनका विशेष लक्षण यह है कि इनके तल पर से प्रतिक्षिप्त होकर प्रकाश की किरणे एक विशेष प्रकार के नियमितन मूने-से बनाती हुई आती दिखायी देती है।

शुक्तिमुक्ता के आकर (कोष)—'आयुर्वेद प्रकाश' (पचम अध्याय मे लिखा है कि इन्द्र ने अपने वज्र से बल नाम के असुर को मारा था। उस समय बल के दान्तो के टुकडे जहा-तहा खारे समुद्र मे गिरे थे; जहा-जहा ये टुकड गिरे वे ही मोतियो के आकर या खजाने बन गये। इन स्थानो के नाम भिन्न-भिन्न ग्रन्थो मे भिन्न प्रकार से बताये गये है और उन स्थानो की शुक्तियो से प्रायः मिलने वाले मोतियो के परिचायक लक्षण भी बताये गये हैं। मोतियो के विशेषज्ञ मोती देखकर ही उसके आकर का नाम, जिस देश के समुद्र से वह मिलता है उस देश का नाम, बता सकते है। प्राचीन तथा आधुनिक जानकारी का साराश इस प्रकार है :—

१ **पारशव** (फारस की खाडी मे उत्पन्न मोती) को वराह-मिहिर ने अत्यन्त महान् गुणो वाला, चमकीला और भारी बताया है। आधुनिक विश्वकोशो के अनुसार फारस की खाडी मे पायी जाने वाली 'मोहर' (Mohar) नाम की सीप से जो मोती मिलते है, वे सर्वोत्क्रृष्ट होते हैं। 'बसरा का मोती' भी इसी खाडी का मोती है—यह सव मोतियो से अधिक टिकाऊ माना जाता है; इसकी चमक व चमडी अच्छी होती है (राजरूप टाक जौहरी)। आयुर्वेद प्रकाश, मे इसी समुद्र के सिलसिले मे आरवाट (कराची), बर्बर

(अरब स्थान) और पैलेस्टाइन के किनारे के आदाय आकरो का भी उल्लेख किया है।

२—**सिहल अथवा लंका** (सीलोन) देश के आकरों में मिलने वाले मोती, वराहमिहिर के अनुसार, अनेक आकृतियो के चिकने, हस के समान श्वेत और स्थूल होते है। परन्तु वर्तमान आकडो के अनुसार लकातट का महत्त्व, मोतियो की दृष्टि से, उतना नही रहा है। यहा की मनारखाडी का मोती सदा छोटा ही मिला है।

३—लका-स्थित समुद्र के सिलसिले मे ही **बगाल** की खाडी से मिलनेवाला मोती गुलाबी रग का होता है। बसरे के मोती के मुकाबले में यह अधिक नरम होता है। पहनने पर पसीने से सफेद हो जाता है। रंग में यह एकसार नही होता। इसको औषधियो से सफेद करते है, और इस कारण इसमे रूखापन आ जाता है तथा इसकी आयु घट जाती है।

आस्ट्रेलिया के मोती की चमक चाँदी की चमक-सी श्वेत होती है। मोती की यह चमक अमरीका तथा इग्लैड में तो कम, परन्तु यूरोप के दूसरे देशो में अधिक पसन्द की जाती है।

प्रशान्त महासागर के मोती चमकदार रंगों के लिये प्रसिद्ध है।

वेनेन्ज्युएला के मोती प्राय काले रंग के होते है। यहा के काले मोतियों में हरे रग की आभा वहुमूल्य है; ऐसे मोती बहुत ही कम मात्रा में मिलते है।

भौतिक गुण—मोतियों का आपेक्षिक घनत्व २ ६५ से लेकर २ ८९ तक होता है। अधिक आपेक्षिक घनत्व गुलाबी मोतियों का होता है। मोतियों की कठोरता ३ ५—४ है।

सावधान—मोतियो की सम्भाल मे बड़ा सतर्क रहना चाहिये। क्योकि एक तो ये अन्य रत्नों की अपेक्षा मोती मृदु होते है अत. इन पर खरौच सहज में ही पड़ सकती है; दूसरे इन पर अम्ल पदार्थो,

(खट्टे) पदार्थो, त्वचा के पसीने आदि, से रासायनिक क्रिया शीघ्र होती है। हा, अम्लो का असर मुक्ता माता के कार्बनिक पदार्थ तक ही सीमित रहता है।

वैसे मोती की आब बनाये रखने के लिये करना यह चाहिये कि माला आदि को उतार कर मलमल के नरम कपडे से साफ करके मग्नीशिया के साथ डिब्बी मे रख दिया जाय **परन्तु** उन्हे रुई मे नही रखना चाहिये; रूईकी गर्मी से मोती में लहर पड जाती है। मोती को सीलन भी नही पहुँचने देनी चाहिये।

मोतियो को दूसरे रत्नो की भाति काटा या चमकाया नही जाता। हा, बहुमूल्य मोतियो की कभी-कभी उनकी फीकी आभा वाली त्वचा को हटा कर उसकी चमकीली परत को खोलने की प्रक्रिया की जाती है; परन्तु यह एक नाजुक काम है।

मोतियो को बींधना व देखभाल—सीप से निकालने के बाद मोती बीधे जाते है। इन्हे लकडी के दो टुकडो मे जकड कर फौलाद के बारीक तार से बीधा जाता है। यह हस्तकला भारत मे बडी सावधानता से की जाती है। यह एक पृथक् विषय है।

जब मोती देर तक पहने जाते हैं तो धूल, पानी और पसीने के प्रभाव से उनकी आभा जाती रहती है।

प्राचीन काल में इसको पुनः चमकाने की अनेक अद्भुत विधिया प्रचलित थी। कहते है कि मैले मोती को कबूतर को खिला दिया जाय और उसके पेट मे २० घटे रहने दिया जाय और फिर निकाल लिया जाय तो उसकी चमक फिर आ जाती है परन्तु इस प्रकार करने से यह भार मे कम हो जायेगा और पतला पड जायेगा।

दूसरी विधि यह बतायी गयी है कि चावल और पानी एक बर्तन मे डालकर नीचे से गरम करे। जब पानी कुनकुना हो जाय तो आग पर से उतार कर मोती को इस माड के साथ कुछ समय तक धोने से मोती साफ हो जायेगा।

कुछ लोगो का विचार है कि केवल अच्छे चावलों से मलकर तरंज के जुशादे से धोने से ही मोती साफ हो जाता है।

आजकल के कुछ अनुभवी जौहरी मोती साफ करने की सर्वोत्तम विधि यह बतलाते है कि या तो मोती को रीठे के पानी से धोया जाय अथवा मूली में गढा बनाकर उसमें शक्कर अथवा बूरे के साथ मोती को भर दिया जाय। इस क्रिया से मोती साफ तो हो ही जाता है—खराब नही होता।

आजकल की वैज्ञानिक विधि मे हाइड्रोजन परऑक्साइड और ईथर मे डालकर पुराना मोती साफ़ किया जाता है—परन्तु इस विधि से साफ करते हुए बार-बार दवा से निकाल कर मोती को देखना पड़ता है, क्योंकि अधिक देर हो जाने पर मोती के रूखा हो जाने का डर रहता है।

बुरादा एक शानदार 'फेस पाउडर'—क्या आप जानते हैं कि मोतिय का बुरादा शारीरिक सौन्दर्य को बढाने के लिए प्रयोग में आने योग्य एक उत्कृष्ट 'पाउडर' है। इसका इतिहास भी बडा अद्‌भुत है। कोई फ्रासीसी यात्री एकबार लंका में मलयाली लडकियों के चेहरे देख कर अचम्भा करने लगा। रग से "कृष्णवर्ण होते हुए भी इतनी चमकदमक कैसे ? पता लगा कि वे लडकियाँ मोतियों की छांट करती है। बिन्धे मोतियों का बुरादा उनके शरीरों की कान्ति [कों उद्दीपक था। तब से फ्रांस में मोतियो का बुरादा ;सौन्दर्यवर्धक पाउडर के रूप में बिकने लगा।

ऐतिहासिक मोती—(१) ससार का सबसे बड़ा मोती हैनरी फिलिप होप के सग्राहालय में है। यह २ इंच लम्वा, ३.२५ इञ्चा चौड़ा है, इसका घेरा ४.२५ इञ्च है। इसके पौन भाग का रंग सफेद तथा शेष का कासे के समान है। मूल्य १२००० पौड तथा भार ४५४ कैरट है।

(२) ३०० कैरट का एक मोती आस्ट्रेलिया के शाही ताज मे है।

(३) सन् १९०१ मे फारस की खाडी से १७८ ग्रेन का एक मोती निकला था।

(४) एक सुन्दर भारतीय गोलाकार मोनी २८ कैरट का है जो रूस की राजधानी मास्को के जोसिया-सग्रहालय मे है।

(५) 'महान् दक्षिणी ब्राह्मक' मे नौ वडे मोती आपस मे स्वस्तिक के आकार मे जुडे हुए है। यह ब्राह्मक सन् १८८६ मे आस्ट्रेलिया के किनारे जाल मे आयी एक सीप मे से निकला था।

सर्वधित मोती (Cultured Pearls)—अति प्राचीन काल मे चीन मे यह रिवाज था कि वे महात्मा बुद्ध की टीन की छोटी-छोटी मूर्तियो पर मुक्ताभ-पदार्थ (Nacreous substance) का लेप कर लिया करते थे परन्तु जापान ने इस दिशा मे प्रगति की और सन् १९२१ मे पूरा सर्वधित मोती बाजार मे वहुत मात्रा मे बिकने लगा। सक्षेप मे यहा इतना ही वताना उपयुक्त होगा कि आम तौर पर घोघे के पाव मे छेद करके मुक्तापदार्थ तथा घोघे के आवरण के तन्तु से निर्मित एक मनका घोघे के भीतर प्रविष्ट करा दिया जाता है। अब यह घोघा, इस विजातीय पदार्थ पर भी मुक्ता-पदार्थ का आवरण वैसे ही चढाता चला जाता है जैसे कि वह प्राकृतिक रूप से अपने भीतर प्रविष्ट विजातीय पदार्थ पर चढाता है। यह प्राय. ३ ५० वर्ष मे १ मिलीमीटर अधिक वडा हो पाता है। आस्ट्रेलिया तथा दूसरे गरम प्रदेशो के खारी समुद्रो मे अधिक वडे सर्वधित मोती बनते है। आस्ट्रेलिया तथा अन्य स्थानो मे १० मिली मीटर तक के व्यास के मोती बन पाते है।

सर्वधित मोती को निकालकर देखते हैं कि उसमे कितने दोष रह गये हैं। भूरापन प्राय सभी सर्वधित मोतियो मे पाया जाता

है, इसलिये इनका रंग उडाया जाता है। जो हलके रग के होते हैं उन्हे गहरा रग दिया जाता है। इनमें निम्नलिखित दोष पाये जा सकते है—धब्बे, गड्ढे, रेखाएँ अथवा उभाड, दरार (गरज), चुराचुरापन मुक्तामाताविहीन क्षेत्र का होना, बेरग स्थान, एक ओर से निष्प्रभ होना आदि। संवर्धित मोती का मूल्य, उसकी गोलाई, दोषरहित होना, रग, मुक्ता-काति की मात्रा और उसकी छोटाई-बडाई पर निर्भर रहता है।

सर्वधित मोतियो की माँग सबसे अधिक अमरीका, कैनेडा और उत्तरी युरोप के धनी लोगों की ओर से रहती है। ये लोग श्वेत तथा श्वेत के सदृश मोतियो के ग्राहक रहते हैं। क्रीम रंग से लेकर पीले रग तक के मोतियो पर मुक्ता-पदार्थ का लेप कुछ अधिक घना होता है। इन देशो की स्त्रियाँ वस्तुत क्रीम रंग के मोतियों को अधिक पसन्द करती है। क्योंकि लेप कुछ अधिक घना होने के कारण इनका बहुत-सी विविध प्रकार की त्वचाओं के रगो के साथ मेल बैठ जाता है। ऐसे मोती बहुत सी महिलाओ को जच जाते हैं और इनका मोल भी कम होता है।

नकली मोती (Imitation Pearls)—असली मोती प्राकृतिक मोती है तथा सर्वधित मोती, मोती बनने की प्राकृतिक प्रक्रिया से उपजाये जाते है। परन्तु तीसरे प्रकार के मोती भी होते है जो सर्वथा बनावटी अथवा असली की केवल नकल मात्र ही होते हैं।

नकली मोतियो का उल्लेख भी शुक्रनीति (अ ४) तथा गरुड़ पुराण तक में मिलता है और असली-नकली की परीक्षा करने का वर्णन किया है।

ये नकली मोती या तो मोम भरे काच के होते है, या ठोस कांच के अथवा मुक्ता माता से निर्मित होते है। मछली के ऊपरी

कठोर आवरण से तैयार किये हुए द्रव पदार्थ मे डुबोकर उक्त नकलियो को असली मोती की छवि दी जाती है ।

पहचान—शुक्रनीति तथा गरुड पुराण (अ ६९) मे बताया है कि नमक मिले तैलयुक्त गरम जल मे मोतियो को रातभर भीगता रहने दे । फिर प्रात काल सूखे कपडे मे लपेट कर धानो से मले । इस क्रिया से जिस मोती का रग न बदले वह **असली** होगा ।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार—मोती के छेद का ध्यान से निरीक्षण करना चाहिये । (१) मोमभरे अथवा मोमिया मोती के छेद के किनारो पर काच-सरीखी आभा दिखायी देगी । (२) प्राकृतिक अथवा सर्वधित मोतियो के छेदो के किनारो की सूरत की अपेक्षा नकली मोतियो के इन किनारो की सूरत अधिक रूखी और ऊँचीनीची दिखायी देगी । (३) परन्तु किनारो को दान्तो से छुआने पर मोमिया अधिक चिकना तथा असली अधिक किरकिरा लगेगा । (४) छेद मे सूई डाल कर देखने पर नरम मोती का सस्पर्श अनुभव होगा । (५) मोमिया मोती मे पिन का सिरा गडाकर देखिये—नकली के तल पर अस्थायी गढा पड जायेगा—दूसरे किसी प्रकार के मोती मे ऐसा नही होगा । (६) लैस से बडा करके देखने पर नकली का तल बेपरतो का समतल दिखायी देगा (७) नकली पर हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड का कोई असर नही होता—जबकि प्राकृतिक व सर्वधित पर से, ऐसा करने पर झाग उठने लगते है । (८) असली का छेद आरम्भ से अन्त तक एक सा होगा ; सर्वधित का बीच मे अधिक चौडा होगा ।

असली और सर्वधित मे अन्तर—असली और सर्वधित मोतियो के बनने की प्रक्रिया एकसी होती है; दोनो पर मोती-उत्पादक ही मुक्ता-पदार्थ का लेप चढाता है । इसलिये घोघा बिना बीधे इनमे सुनिश्चित पहचान करना कठिन होता है । फिर

भी जौहरी लोग केवल दृष्टिमात्र से इन में पहचान कर लेने का दावा करते है। इसमें उनकी भूल रह जाना सम्भावित रहता है और इस प्रकार कभी-कभी मौक्तिक हार के मूल्याकन में हजारों रुपयों का अन्तर रह जाता है।

इन दोनो प्रकार के मोतियों में पहचान करने के लिये अनेक यत्र बनाये गये है—जिनसे सुनिश्चित पहचान हो जाती है। परन्तु **आपेक्षिक घनत्व** के आधार पर किये गये प्रयोग से भी पर्याप्त सही पहचान हो सकती है। इस प्रयोग के लिये शुद्ध '**ब्रोमोफार्म**' में अल्कोहल आदि हलके पदार्थ मिलाकर इतना हल्का कर लेते है कि उसमें 'आइस्लैंड स्पार' नाम का पदार्थ लटकता रहे—न डूबे न ऊपर आकर तैरे। इस द्रव मे असली मोती प्राय तैरते रहेगे और संवर्धित मोती प्राय डूब जायेगे। २ ७१३ घनत्व वाले प्राकृतिक खारे जल के मोतियो की ८० प्रतिशत सख्या इस द्रव में तैरेगी और सर्वधित मोतियो की ९० प्रतिशत सख्या डूब जायेगी।

हीमेटाइट के चमकदार दाने मोती के रूप में बिकते है—परन्तु ये मोती नही होते; इनकी प्रबल धात्वीय चमक इनकी पोल खोल देती है; फिर इसका आपेक्षिक घनत्व बहुत अधिक अर्थात् ५ ० होता है।

मोती का प्रयोग—(क) **चिकित्सा में**—रासायनिक दृष्टि से मोती में कैल्शियम, कार्बन और आक्सिजन ये तीन ही तत्त्व होते है; परन्तु इसकी रचना की प्रक्रिया, विशेषत. घोघे के पेट में ऐन्द्रियिक पदार्थो का सयोग, इसको चिकित्सा मे विशेष उपयोगी बना देता है। अति प्राचीन काल से वैद्य तथा हकीम भस्म एव पिष्टिकाओ के रूप मे नाना रोगो पर इसका प्रयोग करते आये है।

परन्तु सावधान ! —आयुर्वेद ने स्पष्ट ही वता दिया है कि 'अशुद्धानि न कुर्वन्ति गुणान्, रोगास्तु तन्वते।'—आयुर्वेद में बतायी

गयी विधियो से शुद्ध किये बिना रत्न गुण न करके, रोग बढा देते है। चिकित्सा मे मोतियो का प्रयोग निम्नलिखित रीति से किया जाता है —

(१) मोती में ९० प्रतिशत चूना होता है। अत कैल्सियम की कमी के कारण उत्पन्न रोगो मे यह लाभदायक होता है।

(२) यह त्रिदोपनाशक है।

(३) **नेत्ररोगो में** मोती के चूर्ण का अ जन लगाइये।

(४) **स्मरण-शक्ति बढ़ाने के लिये** प्रयोग मे लाया जाता है। उन्माद, अपस्मार, कम्पगत आदि **वायु विकारो को** नष्ट करता है।

(५) **पाचन-शक्ति को तेज करता है**; खूनी ववासीर व संग्रहणी मे लाभदायक है।

(६) **क्षय मे** ज्वर को कम करता है।

(७) **शुक्रमेह** और **श्वेत एवं रक्त प्रदर** मे देते है।

(८) **मूत्रकृच्छ अथवा पेशाब की जलन मे**—केवडे के जल के साथ लाभ देता है।

(९) अत्यन्त थकावट व निर्बलता मे दिया जाता है।

(१०) हृ**दय को** बल देता है; मियादी बुखार मे मोती का जल, शक्ति स्थापित रखता है।

इसका प्रयोग **पिष्टी** और **भस्म** के रूप मे किया जाता है। मुक्तापचामृत, मुक्तादिचूण और वसन्तकुसुमाकर इस से निर्मित प्रसिद्ध आयुर्वेद ओषधिया है।

‘**रत्नचिकित्सा**’ पद्धति के अनुसार ‘मोती-गोलिया’ नारगी रग का प्रभाव रखती है। यह जिन रोगो मे उपयोगी है, उनमे से कुछ इसप्रकार हैं—मस्तिष्क ज्वर, कैसर, पित्तपथरी, मूत्रग्रन्थिप्रदाह, मानसिक दुर्बलता, क्षयरोग, तथा बलगम के साथ खासी।

दैवी शक्ति- १ ज्योतिष की दृष्टि से मोती, **चन्द्रमा** का रत्न है।

२ जिस व्यक्ति के जन्मसमय 'चन्द्र' निर्बल होता है, ज्योतिषी उसको मोती पहनने का निर्देश देते है।

३ यह रत्न जलीय है; स्त्रियों के लिये विशेष उपयोगी बताया गया है। कुछ विद्वान् तो यहा तक कहते है कि इसको केवल स्त्रियां ही धारण करे। इसको धारण करने वाली महिलाओ में लाज, लावण्य आदि स्त्रियोचित गुणों का विकास होता है। स्त्रिया मोतियो को चूडियों और बुन्दो मे जड कर अथवा हार रूप में गूंथ कर पहनती हैं। चन्द्र कर्क राशि का स्वामी है; सूर्य कर्क राशि में १५ जुलाई से १४ अगस्त तक (पाश्चात्य गणना के अनुसार २२ जून से २२ जुलाई तक) रहता है। इस अवधि में उत्पन्न व्यक्तियों पर चन्द्र ग्रह का प्रभाव रहता है। अ क ज्योतिषियो के अनुसार इस अवधि मे उत्पन्न व्यक्तियों का मूल अ क २ माना गया है। जिन व्यक्तियो को अपने जन्म समय का ठीक ज्ञान न हो उनको अ ंक-विज्ञान की विधि से नाम के अक्षरो के अ क गिनकर अपना मूल अ ंक निकाल लेना चाहिए। दो मूल अ क वालो को चन्द्र ग्रह के अशुभ प्रभाव से बचने के लिये 'मोती' धारण करना चाहिए। उनको मोती १५ जुलाई से १४ अगस्त तक के महीने में पडी २, ११, २० और २९ तारीखो मे के सोमवार को शुक्लपक्ष में धारण करना चाहिए। कृष्णपक्ष में मोती का धारण निषिद्ध है।

धारण विधि . मोती धारण करने का मत्र—इस प्रकार है .—

इमं देवा अ सपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठाय महते जानराज्यायेंद्रियस्येंद्रियाय। इममुष्यै पुत्रममुष्यैपुत्र विश एष वोमी राजा सोमोस्माकं ब्राह्मणानां राजा।

चादी मे जडकर पहनने से मोती विशेप लाभ करता है। जिन व्यक्तियो का जन्म मेष तथा वृश्चिक के सूर्य के समय (१५ अप्रैल से १४ मई तक अथवा १५ नबम्वर से १४ दिसम्बर की अवधि में) होता है उन्हे भी मोती लाभ पहुँचाता है।

कितना भारी—२,४,६, अथवा ११ रत्ती का मोती पहनना—चाहिये; ७ या ८ रत्ती का कभी न पहने ।

धारण करने के सम्बन्ध में पृष्ठ ५२ से ६८ तक भी देखिये ।

बदल—जो व्यक्ति महगा होने के कारण मोती नही खरीद सके उनके लिये स्थानापन्न उपरत्न **चन्द्रमणि** बताया गया है। भस्म बनाने के लिये स्थानापन्न सीपी भी बतायी गयी है ।

भौमरत्न—मूंगा—प्रवाल-विद्रुम

३ : | **समुद्री जीव का घर अथवा कंकाल; मूंगे के आभूषण बनाने में इटली विशेष प्रसिद्ध ; सबसे सस्ता पर अधिक गुणी; सारा आकर्षण इसका रग ।**

विविध नाम संस्कृत—प्रवाल विद्रुम, लतामणि, अगारक-मणि, अम्भोधि-पल्लव, भौमरत्नक, रक्ताग आदि । **हिन्दी-पजाबी** मूंगा । **उर्दू-फारसी**-मिरजान और **अग्रेजी**—Coral (कोरल) ।

मूंगा क्या है ?—मोती की भाति मूंगा भी खनिज रत्न नही है; इसीलिये खनिजविज्ञान वेत्ता इस पर ध्यान नही देते । मोती के समान यह भी समुद्र से मिलता है और उसी के समान इसका घटक पदार्थ भी केलशियम कार्बोनेट ही है। परन्तु इन दो विशेषताओ के अतिरिक्त इनमे कोई समानता नही है। मोती अपनी आकर्षक मुक्ता-आभा के कारण रत्नो मे गिना जाता है। मूंगा भी अपने आकर्षक रग और चमक के कारण ही रत्नो मे गिना गया है ।

कीड़े का घर मूंगा— सस्कृत साहित्य मे मूंगे के जो अनेक नाम है, उनमे एक नाम 'लतामणि' भी है; यह नाम इस बात का सूचक है कि प्राचीनो का विश्वास था कि यह एक वानस्पतिक

पदार्थ है देखने में इस का रूप बेलों की शाखाओं-सा होता है।
आधुनिक वैज्ञानिको की खोज के अनुसार मूँगा पोलि पाई (Poli-
pı) किस्म के 'आइसिस नोबाइल्स' (Isıs Nobiles) नाम के
लसदार समुद्री जन्तुओं की उपज है। ये जन्तु बिन-पत्तों और
टहनियो वाले के वृक्ष के रूप में इसका निर्माण करते है। यह वृक्ष
कभी-कभी तो मनुष्य के शरीर के बराबर भी मोटा होता है, परन्तु
सामान्यतया एक फुट ऊँचा और एक इञ्च मोटा होता है। इसका
अत्यन्त सुन्दर लाल रग होता है और इसको खूब चमकाया जा
सकता है। इसमे शहद के छत्तो के-से खाने बने होते है—इन
खानों में ये जन्तु रहते है। तने के ऊपर एक कोमल छिलका होता
है और उसके ऊपर जाली-जैसी झिल्ली चढी रहती है। अपने इन
घरों मे आराम से बैठे इन कीडों को सूक्ष्म दर्शक यंत्र से देखने पर
पता लगता है कि इके मुँह पर नोकीली मूँछे होती है। इनमें स्पर्श
शक्ति अत्यन्त प्रबल होती है—इसके द्वारा ही ये अपना भोजन
पकडते है। इनका भोजन, छोटे-छोटे समुद्री कीड अथवा वनस्पतियों
के छोटे-छोटे कण, होता है।

ये प्राणी समुद्र की छ -सात सौ फुट गहरी तलहटी पर चट्टानो
पर अपना लाल लतामय ढाचा बनाते है , —अर्थात् यो कहिये कि
वे मूँगे को अपने रहने के लिये बनाते है। मोती बनाने
वाला सीपी-कीडा अपने भीतर मोती बनाता है, परन्तु मूँगा
तो एक प्रकार से स्वय कीड़े का घर ही होता है। मूँगा तभी बनता
है जब कि सूर्य की गर्मी उस स्थान पर पहुँच जाये, जहा कि यह
वनता है।

एक ग्रन्थकार ने मूँगे के विषय में लिखा है कि यह किसी कीड़े
का शव है जो समुद्र तल मे पडा-पडा कठिन हो जाता है। लाली
भी इसमें धीरे-धीरे प्रौढ होने पर आती है।' लसदार समुद्री जीव

अपने स्राव द्वारा मूँगे का निर्माण करता है—यह बात तो सभी मानते है। स्राव द्वारा बना हुआ यह मूँगा उसका शरीर है अथवा उसके रहने का स्थान यहा केवल वर्णन करने की शैली मे ही अन्तर प्रतीत होता है। अस्तु इस प्रवाल वृक्ष का नीचे का ठोस भाग 'प्रबाल मूल' तथा पतली शाखाएँ 'प्रबाल शाखाएँ' कहलाती है।

प्राप्ति स्थान—यो तो मूँगा प्राय सभी समुद्रो मे पाया जाता है परन्तु अच्छे, पहनने योग्य मूँगे भूमध्य सागर के तटवर्ती अल्जीरिया, ईरान की खाडी, हिन्दमहासागर आदि से निकलते हैं। इनमे से भूमध्य सागर के मार्सलीज, सर्डानिया, सिसली कोर्सिका आदि स्थानो पर इनके निकाले जाने की खूब चहल-पहल और उमग रहती है। स्पेन के तट पर के मूँगे अधिक गहरे रग के होते हे। फ्रासीसियो ने सन् १४५० ई० से मूँगा निकालने का धन्धा विशेष रूप से अपनाया हुआ है। बीच मे अग्रेज इस धन्धे मे आये अवश्य। सन् १८३० से इटली के लोग इस धन्धे मे प्रविष्ट हुए। अब येही लोग यह धधा करते है। समुद्र से मूँगे निकालने का काम प्रतिवर्ष मार्च से अक्तूबर तक होता है।

वैज्ञानिको का कथन हैं कि मूँगा बनाने वाला समुद्री जीव एक लसीला चिपचिपा पदार्थ होता है। उचित वातारण मे यह समुद्री जल से कैल्सियम कार्बोनेट के कठोर एव सख्त ढेर को निक्षिप्त कर देता है। मूँगा कुछ वर्षो मे जाकर परिपक्व होता है—इसी लिये मूँगा निकालने वाले एक निश्चित पद्धति के अनुसार ही विभिन्न तटो पर से मूँगे निकालते हैं कि जिससे कच्चा मूँगा वे नही निकालते। मूँगा जितनी अधिक गहराई में से निकलेगा, उसका रग उतनी ही कम गहरा होगा।

मूँगे को समुद्र से निकाल कर काटते हैं और इस प्रकार अभीष्ट आकृति का दाना बना लेते हैं। इससे माला के दाने, फूल, पत्ते

आदि बनाये जाते है। मूंगे के दानो में छेद लोहे के तार से किया जाता है। इटली में यह काम हाथ से होता था परन्तु अब जर्मनी के वैज्ञानिको ने इस काम के लिये यत्र भी बना लिया है। मूंगो को काटने-सवारने के कारखानें मार्सलीज और जेनेवा में थे—अब इटली का 'नेपल्स' ही इस काम के लिये एक मात्र स्थान है। नेपल्स में लगभग ४० कम्पनिया यही काम करती है। वहा इस धन्धे में कई हजार व्यक्ति लगे हुए है जिनमें अधिकाश स्त्रिया हैं,

मूँगे से सभी प्रकार के आभूषण, विशेषतया मालाये, हार तथा धार्मिक वस्तुएँ बनायी जाती है। यूरोप की अपेक्षा मूंगो की खपत पूर्वी देशो मे अधिक है। स्पेन आदि के रोमन पादरियो मे मालाओ के लिये इसकी अच्छी खपत होती है। भारत में इनकी माग बहुत है—यहा नक्काशी किये हुए मूँगो का प्रचलन है।

ऐतिहासिक—मूँगो पर इतनी सुन्दर नक्काशी करने का चलन आज तो नही रहा है, परन्तु प्राचीन काल के कुछ नक्काशी किये मूँगे विद्यमान है। बर्लिन में सन् १८८० में लगी एक प्रदर्शिनी में मूँगे का एक हार, ६००० पौड मूल्य का प्रदर्शित किया गया था। इटली के शाही परिवार के पास एक नक्काशी का काम की हुई मूठ विद्यमान है, इसका मूल्य ३६० पौड है।

नीला मूँगा भी एक बार अफ्रीका के पश्चिमी तट से दूर समुद्र से निकला था—परन्तु फिर ऐसा मूँगा दिखायी नही दिया। कृत्रिम रग दिये हुए मूँगे आज कल बाजार मे पर्याप्त है, परन्तु स्थायी रूप से मूँगे को रग देने वाला रजक अभी तक ज्ञात नही हुआ, यही कारण है कि आधुनिक-काल के नये मूँगो के हारों का रग प्राय. उड जाता है।

यहा से ये, भारत, चीन व जापान को भेजे जाते हैं। इस पर नक्काशी खूब अच्छी तरह हो सकती है ।

भौतिक गुण—जैसा कि पीछे बताया है मूँगा समुद्री रीढरहित कृमियो की एक बस्ती के, शाखा-प्रशाखाओ से बने एक ढाचे के रूप मे समुद्र से निकलता है। मूँगे अर्ध-पारदर्शक भी होते हैं और क्रमशः कम पारदर्शक होते-होते सर्वथा अपारदर्शक भी मिलते हैं। मूँगा श्वेत, गुलाबी, नारगी, लाल और काला—इन रगो मे मिलता है। काला मूँगा शेष रगो के मूँगो से इस बात में भिन्न होता है कि यह अधिकतर कैल्शियम कार्बोनेट का बना नही होता, बल्कि सीग-सरीखे पदार्थ का बना होता है। चूनेदार मूँगे के गुण चूर्णाश्म (Calcite) जैसे ही होते हैं। मूँगे का एक विशेष लक्षण यह है कि समुद्र मे यह जिस चट्टान पर लगा होता है उसकी सतह पर यह सदा लम्बरूप खडा होता है। इसके तन्तु प्रत्येक शाखा के केन्द्र से उसकी लम्बाई से लम्बरूप सतह पर फैले हुए होते हैं। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखने पर प्रत्येक शाखा, अपनी लम्बाई के समान्तर पर एक धारी-सरीखी दिखायी देती है। मूँगा टूटने के स्थान पर निस्तेज दिखायी देता है।

इनका आपेक्षिक घनत्व लगभग २ ६५ होता है, कठोरता ३ ५ से ४ तक की कोटिकी होती है। वर्तनाक इसके १ ४८६ तथा १ ६५८ है, इसप्रकार दुहरा वर्तन बहुत अधिक होता है। काले मूँगे के वर्तनाँक १ ५६ तथा १ ५७ है और दुहरावर्तन लगभग ०१ है, इसका आपेक्षिक घनत्व १ ३७ तथा कठोरता की कोटि ३ है। मूँगे पर हाईड्रोक्लोरिक एसिड डालने से झाग उठते हैं; काले मूँगे पर इसका यह प्रभाव नही होता। काले मूँगे को यदि तपायी हुई तार से छुआ दिया जाये तो उससे ऐसी दुर्गन्ध उठती है जैसी कि बाल जलने से आती है।

उत्तम मूँगा—आयुर्वेद के अनुसार सात प्रकार की विशेषताओ वाला मूँगा शुभ-माना जाता है—(१) पके हुए बिम्बफल के समान,

(२) गोल (३) लम्बा (४) सीधा (५) चिकना (६) खांचा या गढा या उभार आदि व्रणरहित (७) और मोटा। इसका रंग सिंदूर हिंगुल, अथवा शिंगरफ से भी मिलता-जुलता होता है। मूँगे की बेल का वर्णन इन शब्दों में किया है :—

बालार्ककिरणारक्ता सागरसलिलोद्भवा यास्ति।
न त्यजति निजरुचि निकषे घृष्टापि सा स्मृता जात्या।

प्रवाल की उत्तम (सुजाति) बेल वह है जो उदय होते हुए सूर्य की किरणों जैसी सर्वथा लाल हो, समुद्र के जल में उत्पन्न हुई हो, और कसौटी पर घिसने पर अपनी काति को न छोड़े।

शुक्रनीति में बताया है कि मूँगा मंगल ग्रह का प्रिय और खून जैसे रग का परन्तु कुछ-कुछ पीली आभा लिये हुए होता है।

मूँगा श्वेत रग का आभा युक्त भी होता है—यह चूँकि देखने में सुन्दर होता है, इसलिये ब्वहार में तो आता है परन्तु रगीन मूँगे के मुकाबले में कम गुणकारी होता है। श्वेत रग के मूँगे को बंगाल में बहुत पसन्द किया जाता है। वास्तविक बात तो यही है कि अन्य रत्नों से इतना असमान होते हुए भी इसका आकर्षण इस के सुन्दर रग पर निर्भर है; इसी के कारण यह महान् अथवा बहुमूल्य रत्नों में गिना गया है।

मूँगे के दोष—'आयुर्वेदप्रकाश' के अनुसार, जिस मूँगे के शरीर में चूना व्याप्त हो, जो टेढा हो, पतला हो, खाँचों से युक्त हो, रूखा हो, काला हो, हलका और श्वेत हो उसको धारण न करे। इसके अतिरिक्त पाण्डुर और धूसर वर्ण के मूँगे भी निम्न कोटि के माने जाते है।

चिकित्सा-सम्बन्धी गुण—प्रवाल में ८३ प्रतिशत कैल्शियम कार्बोनिट, ३ ५ प्रतिशत मैग्नीशियम कार्बोनिट, और ४ ५ प्रतिशत लोहा तथा अल्प प्रमाण मे सिकता होते है। जैवपदार्थ ८ प्रतिशत होते है।

आयुर्वेद शास्त्र के सिद्धान्तानुसार यह **गुण** मे लघु एव रूक्ष; **रस** की दृष्टि से, मधुर तथा कुछ-कुछ अम्ल; इस का **विपाक** मधुर; और इसका **वीर्य,** शीत है। 'रसरत्नसमुच्चयकार' ने भी प्रवाल को मधुर तथा अम्ल बताया है।

रोगों में प्रयोग—प्रवाल का चिकित्सा मे प्रयोग वातपित्त तथा कफ—तीनो के, विशेषकर कफ और वायु के विकृत होने से उत्पन्न रोगो मे किया जाता है।

नेत्ररोगो मे इसका चूर्ण अजन के रूप मे लगाया जाता है। **मस्तिष्क** तथा **नाड़ी की दुर्बलता** को दूर करता है। पाचक, अम्ल-नाशक, ग्राही तथा दीपन है—अत अम्लपित्त, उदर शूल, खूनी पेचिश और बवासीर तथा आन्तो के व्रण मे प्रयुक्त होता है। **हृदय की दुर्बलता, रक्तविकार** और **रक्तपित्त** मे देते है। श्वसन-सस्थान पर इसका विशेष प्रभाव होता है—**पुराने बिगड़े जुकाम, खासी, दमा और यक्ष्मा में** देते है—क्योकि यह कफघ्न है। वृष्य है—इसलिये **शुक्रमेह** मे देते है। अत्यधिक पसीना और रात मे पसीना आने को रोकता है। मूत्रल है; इसलिये **मूत्रकृच्छ** मे प्रयुक्त होता है। '**प्रवाल पंचामृत**' इसका प्रसिद्ध प्रयोग है।

मूँगे को गुलाब जल मे काजल की तरह पीसकर, छाया मे सुखाकर मधु के साथ सेवन करने से शरीर पुष्ट होता है। पान के साथ खाने से कफ व खासी मे लाभ करता है। मलाई के साथ खाने से हृदय की धडकन को दूर करता है।

रत्न चिकित्सा में प्रयोग—'रत्नचिकित्सा' के सिद्धान्त के अनुसार प्रवाल को त्रिकोण काच (प्रिज्म) में से देखने पर पीला दिखायी देता है; अत यह पीली विश्वकिरणो की खान है। श्री रालेड हण्ट के अनुसार नीचे लिखे रोगो मे पीली किरणो की आवश्यकता होती है—अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, मधुमेह, बवासीर,

खुजली, चर्मरोग, कुष्ठ और स्नायविक अवसाद। पीली किरणों से बहुत कठिन मानसिक अवसन्नता भी जाती रहती है।

दैवी शक्ति—ज्योतिप शास्त्र के अनुसार जन्मपत्रिका में यदि मगल क्रूर हो तो प्रवाल धारण करना उचित है। मूँगे की शाख को केवडा अथवा गुलाब जल मे घिसकर गर्भिणी के पेट पर लेप करने से **गर्भपात** रुकता है। बालक के गले मे पहिनाने से पेट का दर्द, **सूखा रोग** आदि दूर होते है। अच्छे घाट का चमकदार मूँगा पहिनने से मन प्रसन्न होता है। मृगी तथा हृदय रोग दूर होते है।

मगल ग्रह के प्रभाव मे उत्पन्न अर्थात् जब सूर्य मेष और वृश्चिक राशि में उदित रहता है उस समय—क्रमश १५ अप्रैल से १४ मई तक और १५ नवम्बर से १४ दिसम्बर तक—उत्पन्न हुए व्यक्ति इस को धारण करते हैं। अक ज्योतिष के अनुसार ९ अक वाले व्यक्ति इसके धारण से लाभ उठा सकते हैं।

थोड़ी कीमत का यह रत्न अत्यधिक गुण रखता है; बहुत से लोग इसको सस्ता समझकर इसका मान नही करते।

परन्तु **याद रहे**—सदोष मूँगा धारण मत कीजिये; दुरगा, अग-भग वाला, गड्ढेदार, मूँगा ज्योतिष शास्त्र के अनुसार, सुखसम्पत्ति को नष्ट करता है; काले धब्बे वाला मृत्यु के समान दु.खदाता होता है, श्वेत छींटे वाला रोग बढाता है; घुना हुआ मूँगा शरीर मे दर्द और अधसीसी उत्पन्न कर देता है। चीर-चोट वाला, शस्त्रद्वारा चोट पहुँचने का कारण बन जाता है।

धारणविधि—जन्मपत्रिका में मंगल ग्रह ४,८, १२ स्थान पर हो तो ८ रत्ती का मूँगा सोने की अगूठी में पहनना बताया है। चन्द्र-मगल के योग मे चादी में मूँगा जडवाना चाहिये—यह पाँच अथवा १४ रत्ती का कभी नही होना चाहिये।

अकज्योतिष के अनुसार ९ अंक वाले व्यक्तियों को लाल, भूरा अथवा

चमकीला भूरा मूँगा पहनना चाहिये। ६, ११ अथवा १२ रत्ती का मूँगा चादी मे जडवा कर तीसरी अगुली मे निम्नलिखित मत्र के पाठ के साथ धारण करना चाहिये।

ओम्। अग्निमूर्धा दिव ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपा रेतासि जिन्वति ॥

धारण करने के सबन्ध में इस पुस्तक के पृष्ठ ५२-६५ भी देखिये।

उपरत्न—मगल का उपरत्न **विद्रुममूल** अथवा **संगमूगी** बताया है। मूँगे की जड से जो शाखाये निकलती हैं, वे 'सगमूँगी कहलाती है। यह तोल मे हलकी होती है और इसमे भी मूँगे के सभी गुण पाये जाते है।

नकली मूँगा—मूँगा एक सस्ता रत्न है, इसलिये नकली मूँगा प्राय नही बनता। **काँच का** बना हुआ नकली मूँगा (१) असली मूँगे से भारी होता है, (२) इसको घिसने पर शीशे को रगडने की-सी आवाज साफ-साफ सुनायी दे जाती है और (३) लैंस से देखने पर ढले हुए काच के समान रवे साफ-साफ दिखायी दे जाते हैं।

हा, **शंखमोती** के बदले गुलाबी मूँगे को चलाने की कोशिश अवश्य की जाती है। परन्तु इन दोनो मे अन्तर स्पष्ट है। शखमोती का आपेक्षिक घनत्व २ ८५ होता है, जबकि मूँगे का आ घ २ ७० है। उन दोनो की सतहो की छवियाँ ही अलग-अलग होती हैं। मूँगे की सतह पर जहा-तहा गढे होते हैं। शखमोती प्राय. रगबिरगा दिखायी देता है।

सीपी अथवा कौडियो को घिस-घिसा कर प्राय विविध आकृतियो के **नकली** श्वेत मूँगे अवश्य बनाये जाते है। परन्तु सीपी टेढ़ी-मेढी परतदार होती है—वह आसानी से पहचानी जाती है।

बुधरत्न-पन्ना

४

एक ही तत्त्व से लाल और प्यारा हरा रंग; हवा लगते ही बिगड़ने वाला पन्ना ; कृत्रिम प्रकाश में भी रंग नहीं बदलता ; दृष्टिशक्ति का मित्र पन्ना ; नकली-असली की परीक्षायें।

विविध नाम—सस्कृत—मरकत, पाचि, गरुत्मत्, हरिन्मणि, गरुडाकित, गरुडोद्गीर्ण, गरलारि, सौपर्णि, अश्मगर्भ । **हिन्दी-पंजाबी** पन्ना; **उर्दू-फारसी**-जमरुद; **अंग्रेजी**-Emerald.

भौतिक गुण—कठोरता ७.७५; आ० घ०—२.६९ से २.८०, वर्तनांक १.५७—१.५८ । नियमित षड्भुजीय आकृति। **दुहरा वर्तन** (पर अधिक नही) । अपकिरणन ०.०१४ (यह भी अधिक नही होता) । पारदर्शक या पारभासक । **द्विवर्णिता**—हरा और नीलासा-हरा ।

वैरुंज का प्यारा रूप—वैरुंज (Beryl) एक पुराना नाम है, जिस से कई प्रकार के रत्नों का बोध होता है। अठारहवी सदी के अंत में 'वैरुंज' नाम उस रत्न के लिये निश्चित कर दिया गया है जिसको हम 'वैदूर्य' नाम से जानते हैं।

विशुद्ध रूप में वैरुंज रंगहीन होता है, पर इसमें हरे या नीलेरंग की झाँई सदा पायी जाती है। रंग के आधार पर यह अनेक प्रकार का पाया जाता है। **पन्ना** (Emerald) इसी का एक प्यारा रूप है—

इसका अपना ही एक विशेष हरा रग है जो मखमली घास के रग के समान हरा होता है। इसी जाति का दूसरा वहुमूल्य रत्न एक्वा-मेरीन अथवा हरितनीलमणि नाम से प्रसिद्ध है। उसका भी अपना अनोखा सौन्दर्य है। जहा बडे नीले या हरे रत्न की अपेक्षा रहती है वहाँ सबसे पहले इसी हरित नीलमणि को याद किया जाता है। पीला या सुनहरा वैदूर्य (सोने के समान पीले रग का), और गुलाबी रग का मोर्गेनाइट भी बैरूज के (Beryl) के विभेद है। बैरुज के ये सभी विभेद एल्यूमीनियम, बेरिलियम, सिलिका और ऑक्सीजन इन चार तत्त्वो के परमाणुओ से बने हुए यौगिक हैं। बेरिलियम की मात्रा किसी मे कम और किसी मे अधिक हो जाती है तथा उसके स्थान पर थोडी मात्रा मे लीथियम, सोडियम, पोटा-शियम, सीसियम तथा रूबेडियन आदि क्षारीय तत्त्व आ बैठते हैं—इनके कारण रगहीन बैरूज मे विविध रगो की झाई—पीली, गुलाबी, आ जाती है। **पन्ने का हरा रग** क्रोमिक ऑक्साइड के कारण होता है। जैसा कि पहले लिख आये है, माणिक्य का लालरग भी उसमे उपस्थित क्रोमियम-तत्त्व के कारण होता है। एक ही तत्त्व की विभिन्न सयोग-अवस्थाओ के कारण रंगो मे इतनी भिन्नता है। **यह भी प्रकृति की एक अद्‌भुत लीला है।** कहते हैं कि काच मे भी यदि उतना ही क्रॉमिक ऑक्साइड मिला दिया जाये जितना कि पन्ने मे है तो इसका रग भी हरा हो जाता है। **पन्ने को गरम करने पर भी**, पानी तो उड जाता है, पर **इसका रग वैसा ही बना रहता** है—इसके रग पर गरमी का कोई प्रभाव नही पडता।

जन्म तथा प्राप्ति के स्थान—पन्ना ग्रेनाइट तथा पेग्मेटाइट चट्टानो के, अतिरिक्त घटक के रूप मे दरारो मे और परतदार चट्टानो के ढेरो मे जन्म लेता है।

एक अत्यन्त रोचक बात यह है कि कोलम्बिया की खदानों से निकले कुछ पन्ने, खदान से निकलने के समय तो स्वच्छ और पारदर्शक होते है—**परन्तु हवा लगते ही उनमें दोष पैदा हो जाते** है—वे चटक जाते हैं या उनमें दरारें पड़ जाती हैं।

प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार वरबर प्रदेश, समुद्र तट, रेगिस्तान के समीपस्थ प्रदेश और तुरुक्ष देश इसकी प्राप्ति के स्थान थे। मिश्र के पूर्वी रेगिस्तान में अभ्रक की परतदार चट्टानों से भी यह प्राप्त हुआ है।

पन्ना संसार में कम से कम ४००० वर्ष से तो सन्मानित रत्न के रूप में प्रसिद्ध है ही। रोमन साम्राज्य, क्लिओपैट्रा तथा महान् सिकन्दर के समय यह मिश्र की खदानो से खूब निकाला जाता था। स्पेनवालो ने दक्षिण अमरीकी विजय के समय पीरू के इडियन लोगो से बहुत ही उत्कृष्ट पन्ने प्राप्त किये थे। ये सम्भवतः कोलम्बिया की खदानो के पन्ने थे।

खानें—आजकल सर्वोत्कृष्ट पन्नों के लिये कोलम्बिया की खदानें प्रसिद्ध हैं। दूसरे दर्जे के पन्ने यूराल पर्वत (रूस) से और ब्राजील से प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, आस्ट्रिया, मिश्र, नार्वे, इटली, अफ्रीका, अमरीका तथा भारत मे भी पन्ने की खदानें हैं। श्री राजरूप टॉक, जौहरी जयपुर ने विविध खानों के पन्नो में अन्तरों का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि **अमरीकी खानों** का पन्ना पुष्ट होता है; यह रग और पानी में सर्वोत्तम होता है। **रूस** का पन्ना कम सख्त होता है। **अफ्रीका** के पन्ने मे श्याम आभा व काले छीटे होते है। **उदयपुर** का पन्ना गहरे रग का किन्तु चुरचुरा होता है। **अजमेर** के पन्ने मे पीलापन अधिक होता है। इस का रंग आकर्षक होता है, पानी भी अच्छा होता है परन्तु कोलम्बिया के पन्ने से कम कठोर होता है। **ब्राजील** के पन्ने में चीरे और

पीलापन काफी होता है। **कोलम्बिया** से जो नये किस्म का पन्ना अभी-अभी आने लगा है वह 'ट्रिपेची' नाम से प्रसिद्ध है। इसकी बनावट छ कलियों की है, कलियों को घिसकर बीच की गिरी का माल तय्यार किया जाता है।

भारत मे 'प्यालो के पन्ने' तथा 'जगत् सेठ के पन्ने' इन दो नामो से प्रसिद्ध पन्ने भी मिलते हैं। सुनते हैं कि मुगल बादशाह हुमायूं के पास पन्ने के कुछ प्याले थे। उन प्यालो के टुकडे इधर-उधर विखर गये—ये कही-कही पाये जाते हैं। इसो प्रकार मुर्शिदाबाद के एक जगत् सेठ को किसी विदेशी मल्लाह ने किसी द्वीप से लाकर कुछ उत्कृष्ट पन्ने दिये थे। उन मूल पन्नो से बनाये हुए पन्ने आज तक बाजार मे चालू हैं। ये दोनो प्रकार के पन्ने उत्कृष्ट जाति के पन्ने माने जाते है।

ऐतिहासिक बातें—कहते है प्राचीन काल मे पन्ने की खदानें अधिकतर मिश्र के ऊपरी भाग मे ही थी। ये खानें लालसागर के पश्चिमी किनारे के समान्तर स्थित पर्वत श्रेणी मे थी। आज से लगभग एक सौ वर्ष पूर्व एक फ्राँसीसी अन्वेषक ने इन खदानों को ध्वस्त अवस्था मे ढूंढ निकाला था। उस को„यहां जो औजार मिले थे, उनसे पता चलता है कि ये खदाने अति प्राचीन काल की है। यूराल पर्वत (रूस) मे स्थित खदानो का भी अचानक सन् १८३० ई० मे एक किसान को पता लगा था।

दक्षिणी अमरीका के कोलम्बिया की खानो से अच्छे पन्ने तो बहुत पहले भी मिले थे—परन्तु इन का ठीक पता सन् १५५८ में लगा। फिर इनमें से पन्ने निकाले जाने लगे। परन्तु जलवायु तथा स्थानीय सरकार की रुकावटो के कारण काम बीच-बीच मे रुकता रहा। अब कोलम्बिया की खदानो से लगभग ८८०,००० कैरट पन्ने प्रतिवर्ष निकाले जाते हैं, परन्तु इनमे से अधिकाश छोटे और सदोष होते हैं।

सबसे बड़ा पन्ने का रवा डेवेनशायर के डयूक के अधिकार में बताया जाता है, यह नियमित षट्कोण के आकार का है। इसका व्यास तथा लम्बाई लगभग दो इन्च है। इसका भार लगभग १३४७ कैरट है। रंग तो इसका बहुत अच्छा है, परन्तु दोषो की इसमें भरमार है। **सबसे बढिया** काट का एक पन्ना कभी रूस के जार के अधिकार में था, इसका तोल ३० कैरेट था। एक छोटा, परन्तु सर्वथा निर्दोष पन्ना, सोने के कंगन में जडा हुआ ब्रिटिश सग्रहलाय के खनिज-विभाग में रखा है। सोने में जड़ी निर्दोष पन्ने की एक चौकी भी ब्रिटिश सग्रहालय में है। एक सुन्दर पन्ना लूव्र के सग्रहालय में है, कहते है कि यह पन्ना नैपोलियन की अ गूठी में था।

अच्छे पन्नो की कीमत इतनी अधिक है कि थोड़े से धनिक लोगों को छोडकर बाकी लोगों की पहुँच से ये बाहर ही रहते है।

वैज्ञानिक लक्षण—पन्ने के रवे ग्रेनाइट, पेग्मेटाइट और चूने के पत्थर के साथ लगे हुए मिलते हैं। **वे शायद ही कभी निर्मल** होते हों। दोषरहित पन्ने का मिलना लगभग असम्भव माना जाता है। सर्वथा निर्दोष तथा 'परिपूर्ण' पन्ने का मूल्य बढिया प्राकृतिक माणिक्य तथा हीरे से भी अधिक होता है। इसमें वर्तन तथा अप-किरणन दोनों ही है—पर अधिक नही। दक्षिणी अमरीका के पन्ने में अप-किरणन स्पष्ट होता है। **द्विवर्णिता** काफी अच्छी है—यह एक ओर से हरा तथा दूसरी ओर से नीला सा हरा दिखायी देता है। गर्म करने पर यह कठिनता से पिघलता है। अम्लों का इस पर कोई असर नही होता। यह दूसरे हरे रग के पत्थरों के विपरीत अपना वास्तविक रग **कृत्रिम प्रकाश में भी बनाये रखता है।** प्लिनी ने तो यहा तक लिखा है कि पन्नों की द्युति न सूर्य के प्रकाश में नष्ट होती है, न छाया में और न मोमबत्ती के प्रकाश में। अपने प्यारे हरे रग के कारण पन्ना आँखों के लिये अच्छा माना

गया है । प्लिनी के अनुसार, आख पर पन्ने का अधिकार सब रत्नो से अधिक है—आख को सबसे अधिक तृप्ति पन्ने को देखकर ही मिलती है—यहा तक कि यदि किसी दूसरी वस्तु को देखते-देखते आखे थक गई हों तो पन्ने को देखने से वे पुन स्वस्थ हो जाती है ।

पन्ना अत्यधिक भंगुर है—इसलिये आभूषणो मे जडते समय बहुत सतर्क रहना चाहिये । काटने पर इसकी मेखला पतली नही रखनी चाहिये ।

श्रेष्ठ, शुभ तथा उत्कृष्ट पन्ने के लक्षण—प्राचीन शास्त्रो मे पन्ने को सात गुणो का बताया है—हरेरग का, भारी (दडक दार); स्निग्ध लोचदार, चारो ओर किरणो को वखेरने वाला; छूने मे देदीप्यमान—सूर्य के समान स्वत प्रकाश से प्रदीप्त;—अर्थात् श्रेष्ठ पन्ने का शरीर ऐसा होना चाहिये । 'आयुर्वेद प्रकाश' के अनुसार **शुभ** पन्ना, जलकी भाति स्वच्छ—पारदर्शक; भारी, आबदार, लोचदार, मृदुगात्र; अव्यग—जो टेढामेढा न हो; तथा बहुरगी हो । **उत्तम पन्ना** वह वताया गया है कि जो शेवाल (घास), मोर और नीलकठ की पॉख, शाद्वल (एक प्रकार की घास), हरेरग का कषाय, कौए का पख, जुगूनू तथा शिरीष पुष्प की झाई के तुल्य आभा को निरन्तर धारण किये हुआ रहे । **इनमें से भी जो सूर्य-किरणो से संयुक्त किया जाने पर, अपने आसपास की चारो ओर की वस्तुओं को हरा कर दें** वह पन्ना उत्तम जाति का माना जाता है । यह बात हम पहले ही लिख आये है अपने **मखमली घास** के रग के कारण ही पन्ने का अधिक मान रहा है ।

दोष—निम्नलिखित दोपो से युक्त पन्ना अच्छा नही माना जाता—लाल-पीली (मिली हुई) आभा वाला, वालू के तुल्य कणदार अथवा कर्कश; रूखा (चमकहीन) ; कालापन लिये हुआ; हलका—हाथ मे लेकर देखने से कम दडक का प्रतीत होने

वाला; चिपटा हुआ—जिसके फलक भीतर की ओर सिकडे हुए प्रतीत हो, वक्र और ऊबड-खाबड आकृति का, काला और चुरचुरा।

'रत्न प्रकाश' के लेखक के अनुसार 'जिस पन्ने में लोच, निम्मस और जर्दी हो, जिसका रग नीम की पत्ती के हरे रंग के समान हरा हो; वह उत्तम माना जाता है। नीम की पत्ती के हरे रग में पीत आभा स्पष्ट भासती है, पन्ने में यही पीत आभा अपेक्षित है।' 'पचतत्र' के एक प्रसिद्ध श्लोक में लिखा है कि काच के समीप यदि 'सोना रख दिया जाये तो काच की आभा पन्ने की आभा हो जाती है—इस 'मारकती' चमक को ही, मानो, पचतत्रकार भी पन्ने के हृदयहारी रग का 'प्राण' समझते है।

परन्तु एक पाश्चात्य लेखक का कहना है कि **पीली झांई** वाले पन्ने का मूल्य कम होता है। श्रेष्ठ पन्ने तो गहरे हरे से लेकर घास के से हरे रग के होते है—जब इस हरे रग में काच की आभा मिल जाती है तो वही मखमली आभा श्रेष्ठ पन्ने की होती है। यो पन्ने में पीले छीटे होना तो दोष माना ही गया है।

पन्ने के रवे की काटें व सजावट—हम ऊपर लिख आये हैं कि पन्ने के अधिकाश रवे सदोष ही मिलते है। लेस से देखने पर तो प्राय सभी सदोप दिखायी देते हैं और उन्हे 'परदार' (feathered) पन्ना के नाम से बेचा जाता है।

पन्ने के जो रवे अपेक्षया स्वच्छ होते है उन को प्राय. आयताकार अथवा वर्गाकार पहल वाली आकृतियो में काटा जाता है, और इस प्रकार की काट का नाम भी 'पन्ना काट' है। सदोष पन्ने को कैबोशौग काट में काटा जाता है। और उसके ऊपरी उन्तोदर तलपर नक्काशी की जाती है। आदर्श तो यह है कि रवो को इस प्रकार काटा

जाये कि उनका रग सर्वथा एक-सा गहरे-से-गहरा हरा दिखायी दे और उसकी कमिया अधिक से अधिक ओझल हो जायें। रोमन तथा पूर्वीय प्रदेशो के लोग पुराने जमाने में षड्‌भुज टिकुलिया बनाकर, उन्हे पिरोकर पहना करते थे।

रोगो में प्रयोग—'आयुर्वेद प्रकाश' (अध्याय ५ श्लोक १०५) मे पन्ने के विषय मे लिखा है कि यह विषको मारने वाला, शीतल, रसका मीठा, अम्ल तथा पित्त को दूर करने वाला, रुचिकारक, पोषक और भूतव्याधा को दूर करता है।

रसतत्र में पन्ने के निम्नलिखित गुण-कर्म बताये है—दीपन, रसायन, ओजवर्धक तथा विषघ्न।

"रसरत्नसमुच्चय" में लिखा है कि—

ज्वर-छर्दि-विष-श्वास-सन्निपाताग्निमान्द्यनुत्।
दुर्नाम-पाण्डु-शोथघ्न ताक्ष्यंमोजो विवर्धनम्॥

पन्ना बुखार, वमन, विष, दमा, सन्निपात, अपच, बवासीर, पाण्डु, शोथ—आदि रोगो को नष्ट कर शरीर के बल एव सौन्दर्य को बढाता है। अभिप्राय यह है कि चिकित्सा के सम्बन्ध में पन्नें को विषघ्न एव बलवीर्यवर्धक सभी ने स्वीकार किया है। यह हम पहले ही बता आये है कि रत्नो का रोगो मे प्रयोग भस्म तथा पिष्टिका आदि के रूप मे किया जाता है, अतएव विशेषज्ञ वैद्य की सलाह पर निपुण वैद्य द्वारा तय्यार की हुई भस्म आदि का प्रयोग उचित मात्रा मे किया जाना अधिक हितकर है।

आयुर्वेद के अनुसार पन्ने की भस्म ठढी, मीठी और मेदवर्धक है। यह क्षुधावर्धक है और अम्लपित्त तथा जलन को दूर करती है। इसीलिये तीव्र तथा मृदुज्वर, मिचली और वमन, विषक्रिया, दमा

अजीर्ण, बवासीर पाण्डु और हर प्रकार के घाव और सूजन को दूर करती है।

प्यारे हरे रंग के कारण पन्ना दृष्टि शक्ति के लिये उत्तम है। मिरगी से बचाता है, पेचिश को दूर करता है। सन्तान-जन्म के समय स्त्री का परम सहायक है।

हलके हरे से गाढे हरे रग तक का पन्ना, अच्छी प्रकार घिसा हुआ, मुलायम तथा स्वच्छ हो, उसमें दाग, चीर या धुआ न हो और फिर उसमें भार भी पर्याप्त हो तो वह बहुमूल्य रत्न समझा जाता है। एक रत्ती वजन का यह रत्न सदा अपने सग्रह में रखना चाहिये।

रत्न चिकित्सा के अनुसार, एक ड्राम सुरासार से भरी एक शीशी में सुरासार में धोया आधी रत्तीभर पन्ना सात दिन तथा सातरात तक अधेरे में रख लेना चाहिए। फिर उसमें २० नं० की एक औस गोलिया डाल दीजिये और उन्हे इतनी देर तक रखिये कि वे सुरासार को भली भाति चूस ले। रत्न चिकित्सा के प्रयोजनार्थ ये गोलियाँ 'पन्ना-गोलिया' कहलायेगी।

इस चिकित्सा के अनुसार हरा रग शरीर के मास-स्थान पर विशेष अधिकार रखता है। शरीर में हरे रंग की कमी से मास पर प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से, इन गोलियों का प्रयोग दमा, फोड़े फुंसियां, सर्दी का प्रकोप, हृदय रोग, अम्ल की अधिकता, इ फ्ल्यूएंजा उपदंश, शीतपित्त (Urticaria), सिरचकराना, आदि रोगों में सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

दैवी शक्ति—पन्ना बुधग्रह का रत्न है जो व्यक्ति बुधग्रह के प्रभाव शाली होने की अवधि में उत्पन्न होते है—उनको इसका धारण करना उपयोगी है—अर्थात् उस समय जब कि सूर्य मिथुन-राशि का होता है—१५ जून से १४ जुलाई तक और १५ सितम्बर से १४ अक्तूबर तक। अक ज्योतिष के अनुसार इन व्यक्तियों का

मूल क ५ होता है। जिन लोगो को अपने जन्म की ठीक तारीख ज्ञात न हो, वे पाश्चात्य विधि से अपने नाम के अक्षरो के अको को जोड कर अपना मूल अक निकाल सकते हैं।

बुध ग्रह के प्रभावाधीन जन्मे व्यक्ति अवसर को पहचान कर उससे लाभ उठानें वाले परन्तु विपदाओ में शीघ्र घबरा जाते है। वे किसी के सहयोग मे तो बडी योग्यता से काम करते है—परन्तु स्वय अकेले काम करते हुए कठिनाई आने पर टूट जाते हैं। ऐसे व्यक्ति छोटी-छोटी तुच्छ बातो से घबरा उठते है।

धारणविधि—ऐसे व्यक्तियो को चाहिए कि बुध के अनिष्ट प्रभाव की शाति के लिये सोने की अगूठी मे पन्ने को मँढवा कर मध्यमा अगुली मे धारण करे—उन्हे यह अगूठी अपने जन्म मास की ५, १४ और २३ तारीख को सूर्योदय से दो घटे पश्चात् पहननी चाहिये—यदि उस दिन बुधवार हो तो और भी अधिक शुभ होगा। इसको धारण करते समय निम्नलिखित मत्र का उच्चारण करना बताया गया है—ओ३म्। उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते ससृजेथामय च। अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥

पन्ना धारण करने वाले की शुचिता की रक्षा करता है, **यदि उसके विरुद्ध कोई षड्यत्र हो रहा हो तो उसका भडा फोड़** देता है; इसका रग अमरता का प्रतीक माना जाता था, इसलिये पादरी वर्ग मे इसका खूब प्रचलन था। पन्ना पहिनने वाले की बुद्धि, तथा स्मृति शक्ति बढती है।

बदल—जो व्यक्ति पन्ना खरीद सकनें की सामर्थ्य न रखते हो उन्हे हरित नील मणि (Aquamarine) धारण करनी चाहिये—इसका भी वही प्रभाव होता है जो पन्ने का होता है।

इस सम्बन्ध मे पृष्ठ ५३-६५ भी देखिये ।

सश्लिष्ट पन्ने—पहले पहल १९१० मे कैरोल चैथम नाम के वैज्ञानिक ने सश्लिष्ट पन्ने बनाये थे। १९३५ में उसकी बतायी हुई प्रक्रिया द्वारा निर्मित सश्लिष्ट पन्ने बाजार मे बिकने लगे है। इस प्रकार के एक हजार कैरेट तक के रवे बनाये गये है। और इनसे काट कर पहल-बन्धे रवे पाच कैरेट तक के बाजार मे उपलब्ध है।

परीक्षा—इन सश्लिष्ट पन्नो का **रंग** नीला-सा हरा होता है—प्राकृतिक पन्नों मे यह रग आमतौर पर नही पाया जाता। इस प्रकार के सलिष्ट तथा प्राकृतिक पन्नो में कुछ अन्य **वैज्ञानिक** अन्तर इस प्रकार है—(१) कोलम्बिया के प्राकृतिक पन्ने के कम से कम वर्तनाक से भी ऐसे सश्लिष्ट पन्ने का वर्तनाक लगभग ०१ कम है (२) सश्लिष्ट की दडक (आ० घ०) प्राकृतिक कोलम्बियाई पन्ने के कम से कम आपेक्षिक घनत्व २७१ से भी कम होती है। (३) पराबैगनी किरणों में सश्लिष्ट पन्ने अधेरे में **प्रतिदीप्त** हो जाते हैं। गहरे हरे रंग के प्राकृतिक पन्नो मे यह प्रतिदीप्ति बहुत ही कम बार और बहुत थोडी मात्रा मे दिखायी देती है। (४) लघुतरंग पराबैगनी किरणों में प्राकृतिक पन्ना अपारदर्शक होता है—सश्लिष्ट पारदर्शक होता है (५) सलिष्ट पन्नों मे तिनकों के गुच्छे जैसे अथवा भीने परदे-सरीखे अन्तरावेश होते है और प्राकृतिक पन्नों से उनका वर्तनाक कम (१ ५६७-१ ५६४) और आ घ (दडक) बहुत कम (२ ६७) होता है। २ ६५ से २ ६६ तक के आ. घ. वाले द्रव में प्राकृतिक पन्ना सदा डूबेगा ही और सश्लिष्ट लगभग सदा तैरता रहेगा।

सावधान—पन्नों में अक्सर दरारे होती है—जो खाली आँख से ही दीख जाती है। इस कारण इनके दाम बहुत कम लगते है। लोग इस दोष को छिपाने के लिये ऐसे पन्ने पर तेल चुपड़ देते हैं। तेल और पन्ने का वर्तनाक एक होने से अब ये दरारे खाली आख

से पकड मे नही आती। तेल यदि नीरग हुआ तो उसमे पन्ने का-सा रग भी मिला देते हैं। बस, मामूली-सी गर्मी देने से यह तेल ऊपर आ जाता है। **चतुर जौहरी को यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये।**

कांच के बने कृत्रिम पन्ने—(१) काच के बने पन्ने को छूकर देखा जाय तो वह गरम प्रतीत होगा। असली अथवा प्राकृतिक पन्ना रवा होने के कारण ताप का सुवाहक होता है और स्पर्श में ठढा लगता है। (ख) काच के पन्ने को आँख के सामने थोडी देर रखने पर गरमी प्रतीत होगी—असली पन्नें को रखने से आख मे ठढक आ जायेगी।

(२) काच का पन्ना हाथ मे रखने पर भारी प्रतीत होता है—असली पन्ना हलका, मुलायम और चित्ताकर्षक होता है।

(३) नकली पन्ने को लकडी पर रगडा जाये तो इस की चमक बढ जाती है।

(४) दान्त कुरेदने की अथवा दियासलाई की तीली मे लगा-कर पानी की एक बूंद रत्न की सतह पर धीरे से रखिये। रत्न बनावटी होगा तो बूंद उस पर फैल जायेगी परन्तु असली रत्न की सतह पर बूंद बनी रहेगी।

(५) नकली पन्ने की टूट पर चमकीली धारिया होती है।

प्लास्टिक का पन्ना—(१) प्लास्टिक से बने नकली पन्ने का आपेक्षिक गुरुत्व १ ५८ से कम होता है। इसकी कठोरता भी कम होती है—इन दो विलक्षणताओ से इन्हे असली से अलग किया जा सकता है। (२) प्लास्टिक के बने कृत्रिम पन्ने मे यदि बिजली से गरम की हुई सूई की नोक चुभा दी जाय तो उससे सडॉद आयेगी। (३) यो भी पिन अथवा उस्तरे के पत्ते से यह सरलता से कट जाता है।

गुरुरत्न—पुखराज

: ५ :

'पुखराज' नाम से धोखा : घिसने से रंग में निखार : जच्चा का मित्र : कुष्ठ और बवासीर का शत्रु पुखराज का बदल—सुनैला ।

विविध नाम—संस्कृत पुष्पराग, पीतस्फटिक, पीतमणि, जीव-रत्न आदि; **हिन्दी पंजाबी उर्दू फारसी**—पुखराज, **अंग्रेजी**—Topaz.

भौतिक गुण—कठोरता, ८; आपेक्षिक घनत्व, ६ ५३ वर्तनांक—१ ६१तथा १'६२; दुहरावर्तन ० ००८ तथा अपकिरणन ०'०१४ है। द्विवर्णिता इसमें तीक्ष्ण नही होती। इसको रगड़ने से बिजली उत्पन्न होती है। आभा इसकी काचसम होती है।

कभी सभी पीले रत्नों को पुखराज' या Topaz कहा जाता था—विशेषतया ओलिविन का पीला उपभेद क्राइसोलाइट तथा पीला स्फटिक, साइट्रीन, तो पुखराज के नाम से ही बिकते थे। अब भी जौहरी पीले नीलम को 'प्राच्य पुखराज' धुँधले स्फटिक को 'धुँधला 'पुखराज' पीले स्फटिक को स्कॉच पुखराज' नाम से बेचते हैं। प्लिनी ने जिस पुखराज का वर्णन किया है, वह क्राइसो-लाइट हो है। परन्तु 'प्राच्य पुखराज' अथवा पीले नीलम की कठोरता ९ है और उसका आ० घ० ४ है; स्कॉच अथवा स्पेनिश पुखराज की कठोरता ७ तथा आ० घ० ३ ६५ है। जब कि असली पुखराज की कठोरता ८, तथा आ. घ ३ ४ से ३ ६ तक है।

असली पुखराज ऐल्यूमिनियम का फ्लूओ-सिलिकेट है। फ्लोरिन तत्त्व से बने थोडे से रत्न-खनिजो में पुखराज की गिनती है। इसमें फ्लोरीन की मात्रा १५'५ तथा अल्पमात्रा में जल भी होता है।

इसके भीतर अत्यन्त सूक्ष्म तरल अथवा गैसीय पदार्थ, विशेषतया द्रव कार्बन डाईऑक्साइड तथा अन्य अशुद्धियाँ पायी जाती है। असली प्राकृतिक पुखराज के रवे त्रिकोणाकार तथा मीनारी सिरोंवाले होते हैं। इन्हे विषमलम्बाक्ष समूह मे रखा जाता है।

निर्माण तथा प्राप्ति—पुखराज प्राय ग्रेनाइट, नाइस तथा पैग्मेटाइट शिलाओ पर बिनबुलाये मेहमानो की तरह आ घुसे आग्नेय पदार्थों से निकलने वाली जलवाष्प तथा फ्लोरीन गैस की क्रिया से **बनता** है। इसके साथ मिलने वाले दूसरे खनिज टूर्मेलीन, स्फटिक, टंगस्टन, आदि हैं परन्तु पुखराज भारी तथा टिकाऊ होने के कारण इन शिलाओ से बहकर आये ककडो के रूप मे नदी-तलो पर भी मिल जाता है। **सैक्सनी** मे यह टूर्मेलीन बिल्लौरी शिलाओ मे अस्तर रूप में जमा हुआ मिलता है। **रूस और साइबेरिया** में प्राय नीले रग के पुखराज ग्रेनाइट की शिलाओ की गुफाओ मे मिलते है। सबसे अधिक **बढिया किस्म** के पुखराज **ब्राजील** की खानो से प्राप्त होते हैं। **रोडेशिया** से प्राप्त होने वाले पुखराज प्राय रग-रहित अथवा पीले-से नीले रग के होते है; काटने पर ये सुन्दर लगने लगते है। श्री लका, जापान, मैक्सिको, तस्मानिया, कोलोरेडो, न्यू इग्लैंड आदि से भी अच्छे पुखराज प्राप्त होते है। श्री लका से प्राप्त पुखराज पीले, हलके हरे, अथवा रगरहित होते हैं। वहा इन्हे 'जल नीलम' कहा जाता है। जो पुखराज माणिक्य साथ के मिलते है वे उत्तम जाति के होते हैं।

श्रेष्ठ तथा शुभ पुखराज—प्राचीन ग्रन्थो के अनुसार, उत्तम पीली काति वाला, हाथ मे लेने पर वजनी लगता, सुन्दर रगका, शुद्ध, अतिशय स्वच्छ (पारदर्शी), धब्बो से रहित, बडा दाना, समअङ्ग-वाला, मुलायम, पीली कनेर अथवा चपा या अमलतास के फूल के समान पीतवर्ण, स्पर्श मे चिकना, छिद्ररहित और चमकदार पुख-

राज श्रेष्ठ और शुभ माना जाता है। इस प्रकार का पुखराज क्षयरोग नाशक, कीर्ति, पराक्रम, सुख, आयु एवं सम्पत्ति का वर्धक बताया गया है।

उत्तम जातका पुखराज वह कहलाता है कि जो कसौटी पर घिसने से अपने रग को और अधिक बढा देता है। **दोष**-काले रग की बूँद-बूँद-सी वाला; दो छिद्रयुक्त; सफेद रंग का; मलिन; हलका; बेरंग; बालू के समान छूने में करकरा, चमकरहित, ऊँचा-नीचा, मुनक्का के रंग जैसा; लाल-पीले मिलेरंग का; पीला-सफेद मिले पाण्डु रग का पुखराज सदोष, और इसी कारण अग्राह्य है।

पुखराज कई किस्म के मिलते है—परन्तु सामान्यतया वे रंग-रहित ही होते है। और जल जैसे स्वच्छ होते हैं। रंगहीन तथा वे पुखराज जिन में पीली से लेकर शेरी-शराब की-सी आभाएँ हों, बहुत अधिक प्रचलित है। हल के नीले तथा हलके-हरे रंग के पुख-राज भी कभी-कभी मिल जाते हैं परन्तु प्रकृति से ही लाल और गुलाबी पुखराज अत्यन्त दुर्लभ होते हैं। बाजार में जो गुलाबी पुखराज बिकते है, उनमे से अधिकाश को **कृत्रिम प्रक्रिया से गुलाबी** किया हुआ होता है। उपयुक्त भूरे-से पीत वर्ण या गहरे पीत वर्ण के पुखराज को एक छोटी सी कुठाली या हुक्के की चिलम में रख, रेत, अथवा मैग्नीशिया सरीखे, रासायनिक दृष्टि से अक्रिय पदार्थ के साथ भर कर, सतर्कतापूर्वक, गरम करते रहे। इस प्रकार प्राकृ-तिक रंग निकल भागेगा। परन्तु ठंढा हो जाने पर सुन्दर गुलाबी रग प्रकट हो जायेगा, जो स्थायी रहेगा। इस बढ़िया रंग का मूल्य बहुत बढ जाता है। यदि आंच धीमी रखी जायेगी तो गुलाबी रंग के स्थान पर सामन मछली की खाल का-सा नारंगी हलका गुलाबी रग आयेगा। गरम करने पर पीले पुखराजों का रंग सर्वथा उड़ जाता है और रूस की खदानों से मिले हलके पीले रग के पुखराज

धूप मे रखने पर अपना रग खो बैठते हैं। यही कारण है कि इस समय ब्रिटिश सग्रहालय मे रूसी पुखराजों को ढककर रखा गया है।

पुखराज **सरलता से चिर जाता है**—इसलिये इसको सावधानी से वरतना चाहिये। फिर भी यह एक पर्याप्त कठोर पत्थर है; कुरुन्दम (जैसे लाल तथा नीलम) वर्ग के रत्न तथा हीरा ही इससे अधिक कठोर होते है। **इसको खूब चमकाया** जा सकता है और इसीलिये इसकी अपनी एक विशेष मसृण या **चिकनी चमक** होती है। खूब रगीन पुखराजो मे द्विवर्णिता स्पष्ट होती है परन्तु धुंधले पुखराजो मे द्विवर्णिता मुश्किल से दिखायी देती है। रगडने पर इससे तीक्ष्ण विद्युत्-लहरे निकलने लगती हैं।

सौन्दर्य को जगाने के लिये—पुखराज 'ज्वलन्त' तथा 'जाल' काटो मे काटा जाता है। परन्तु बड टुकडो मे कुछ अतिरिक्त फलक भी बनाये जाते है। बहुत से पुखराजो की मेखलाये अडाकार वृत्ताकार अथवा दीर्घ आयत के आकार की बनायी जाती हैं। पुखराज मे दोष, त्रुटिया तथा पर भी होते हैं। कई रत्न यो अच्छे होते हैं परन्तु उनमे उपयुक्त रग का अभाव मजा किरकिरा कर देता है।

चिकित्सा मे प्रयोग—'आयुर्वेद प्रकाश' के अनुसार, पुखराज दीपन, पाचन और हलका होता है और शीतर्वीय, अनुलोमन, रसायन तथा विपघ्न होता है।

यह निम्नलिखित व्याधियो को नष्ट करता है—विषक्रिया, उल्टी, कफ-वायुविकार, मन्दाग्नि, **कुष्ठरोग, बवासीर** और जलन, पीलिया, नक्सीर आदि।

पुखराज को गुलाब जल और केवडा-जल मे २५ दिन तक घोटकर, कज्जल की भाँति पीस लेवे और फिर इसको छाया मे

सुखाकर रखले और सेवन करे। वैद्य लोग श्वेत पुखराज की भस्म बनाते है। इसकी मात्रा चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक है।

रत्नचिकित्सा—में श्वेत पुखराज का प्रयोग किया जाता है। इसको प्रिज्म (त्रिकोण) कांच से देखने पर आसमानी रग का दिखायी देता है। अल्कोहल में रखने पर श्वेत पुखराज हीरे के समान चमकता है। बहुत चमकीला, बेदाग और अच्छे सुडौल आकार का पुखराज प्राय नही मिलता; मिले तो उसके नकली होने का सदेह करना चाहिये और वैज्ञानिक विधियों से उसकी परीक्षा करके ही रत्न चिकित्सा में उसका प्रयोग करना चाहिये। रत्नचिकित्सा के एक लिये एक **रत्ती** ही काफी होता है।

इस चिकित्सा में इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में वर्णित विधि से 'श्वेत-पुखराज'—गोलिया अथवा असमानी गोलिया काम में लाते है। इन 'श्वेतपुखराज' गोलियों द्वारा दूर हो जाने वाले रोग इस प्रकार है :—पित्त प्रकोप तथा पित्तज्वर; खून बहना, रक्तचाप (खून के दबाव की वृद्धि), गाँठयुक्त प्लेग, जले-कटे के घाव; हैजा, कुत्ताखांसी, घाव, पेचिश या रक्तातिसार; दानेदार ज्वर, गलगंड, मसूढे आदि की सूजन; सिरदर्द; सूजी हुई आंतें; मस्तिष्क प्रदाह; मिचली, दिल की धडकन, स्कार्लेट (सुर्ख) ज्वर (Sarlet fever) आदि।

दैवी शक्ति—जैसा कि हम पुखराज की वैज्ञानिक विशेषताओं में चर्चा कर आये है, पुखराज को रगड़ने अथवा तपाने पर वह विद्युत् की लहरे छोड़ता है। इस विशेषता के आधार पर प्रसूति के समय पुखराज को गरम करके गर्भिणी को देने का उल्लेख मिलता है। कहते है कि बिजली की लहरे गर्भिणी को प्रजनन मे सहूलियत पहुँचाती है। विद्युत्-गुण में केवल टूर्मलीन ही पुखराज

से ही बढकर होता है ।

ज्योतिष की दृष्टि से पुखराज गुरु ग्रह का प्रतिनिधि रत्न है। गुरु को पुष्ट करने के लिये इस पुस्तक के दूसरे भाग में (पृ० ५३ से ६५ तक) वर्णित नियमो के अनुसार इसके धारण का विधान है। जिन व्यक्तियो का जन्म सूर्य की धनुराशि में अर्थात् १५ दिसम्बर से १४ जनवरी तक हो उनका रत्न पुखराज है। सात या १२ कैरेट का पीला पुखराज, विशेष रूप से तीसरी अगुली मे, सोने की अगूठी मे जडवा कर धारण करना चाहिये। रत्न का वजन ६, ११ अथवा १५ रत्ती तो कभी भी नही होना चाहिये। इसको धारण करने का मत्र निम्नलिखित है —

ओ३म् । बृहस्पते अति अदर्यो अर्हा द्युमद्विभाति ऋतुमज्जनेषु ।
यदीदयच्छवस ऋतप्रजानां तदस्मासु द्रविण धेहि चित्रम् ॥

पुखराज समृद्धि, स्वास्थ्य, दानशीलता, सासारिक सुख दीर्घायुष्य आदि प्रदान करता है।

ब्रिटिश सग्रहालय मे रखी एक प्राचीन पुस्तक के अनुसार, पुखराज के धारण करने से रात को डर नही लगता; कायरता समाप्त हो जाती है, बुद्धि को तो यह बढाता ही है, साथ ही क्रोध को और पागलपन को भी शात करता है। और आकस्मिक मृत्यु की आशका को दूर कर देता है।"

पुखराज का बदल—जो व्यक्ति असली पुखराज नही खरीद सकते वे इस का उपरत्न 'सुनेला' या 'सोनेला' धारण कर सकते हैं। **सोनेला** अथवा सुनेला साइट्रिन पीला पत्थर है इसमे पीले पुख-राज का भ्रम होता है परन्तु इसकी दड़क कम और अग नरम होता है। यह पूर्ण पारदर्शक होता है।

असली पुखराज की पहचान—पुखराज से जौहरी तथा साधा-रण जन सभी सुपरिचित है। परन्तु सामान्यत तो वे इसके वदल—

जैसे कि साइट्रिन बिल्लौर—अथवा संश्लिष्ट तथा नकली प्रतिकृति—काच के पुखराज को पुखराज समझ लेते है। प्राचीनकाल में तो प्रत्येक पीले रत्न को, उसके आगे 'प्राच्य' आदि उपसर्ग लगाकर पुखराज कह दिया जाता था। आजकल असली पुखराज को जौहरी 'बहुमूल्य पुखराज' नाम से बेचते हैं।

बहुमूल्य पुखराज के अत्यन्त प्रसिद्ध रंग पारदर्शक पीतरग, पीतिमायुक्त भूरा और नारंगी-भूरा, हैं। दूसरे कम उपलब्ध रंग—बीचका लाल (जो प्राय., परन्तु सदा नही) गरम करने पर ही आता है, बहुत हलके से लेकर हलका नीला, बहुत हलका हरा, बैंजनी, हलका हरा-सा पीला, तथा रंगहीनता, भी मिलते हैं।

पुखराज का भ्रम इन रत्नो से सम्भव है .—बिल्लौर, टूर्मेलीन, कुरुन्दम समूह (गुलाबी, पीला और हलका नीला नीलम), बैरुज वर्ग के रत्न (स्वर्ण-बैरुज, हरित मणि आदि), सश्लिष्ट कुरुन्दम और काँच। टूर्मेलीन और काँच के नकली पुखराज देखने में असली पुखराज से लगते है—इनका वर्तनांक भी पुखराज के वर्तनाक जितना ही है। परन्तु काच में दुहरा वर्तन नही है; टूर्मेलीन का आ घ० पुखराज से बहुत कम है। पुखराज जितनी हलकी आभा के रत्न में जितनी बहुर्णिता होने की आशा रहती है—उस से कही अधिक बहुवर्णिता इसमें पायी जाती है। पीता पुखराज में स्पष्ट तीन रंग--भूरा-सा-पीला, पीला और नारंजी-पीला—दिखायी देते है। नीले पुखराज में नीले रग की मात्रा के अनुसार, रंगहीन और हलका नीला—ये दो रग दिखायी देते है।

पीले बिल्लौर से इसको पहचानने के लिये दोनो की घनता देखनी चाहिये। ब्रामोफॉर्म को, बेंजीन आदि द्रवो से हलका करके २·६५ घनता का बना लेना चाहिये। इस में रगहीन या पीला बिल्लौर और ऐमीथिस्ट सब या तो लटके रहेगे अथवा धीरे-धीरे डूबेंगे या धीरे-धीरे ऊपर उठेंगे। पुखराज डब जायेगा।

इमिटेशन का अग असली पुखराज से अधिक नरम होता है; रुखा होता है और चमक काच की-सी होती है; इमिटेशन का दूधक स्थिर, रुखा तथा आभारहित होता है।

असली पुखराज को पहचानने की ये विधिया भी बतायी गयी है—(१) सफेद कपडे पर रखकर धूप में देखे तो कपडे पर पीली झाई-सी दिखायी देगी। (२) चौबीस घटे तक दूध मे रखने के बाद असली पुखराज की चमक क्षीण नही होती। (३) जहरीले जानवर द्वारा काटे गये स्थान पर असली पुखराज को लगाने से वह उसके विष को खीच लेता है।

शुक्ररत्न—हीरा, वज्र

: ६ :

हीरक द्युति; 'वारितिर' हीरा; उत्कृष्ट हीरा; हीरा बनाने की मशीन; प्रसिद्ध ऐतिहासिक हीरे-असली-नकली की पहिचान, रोगो मे प्रयोग दैवी शक्ति, पुत्र चाहने वाली स्त्रियों के लिये उचित हीरा; विवाह सबन्ध में मधुरता।

विविधनाम सस्कृत—वज्र, दिद्युत्, अर्क, भिदुर, शतकोटि, हीरक, अभेद्य, सायक, कुलिश, आदि; **हिन्दी-पंजाबी**—हीरा; **उर्दू-फारसी**—अल्मास; अग्रेजी—Diamond

भौतिक गुण—कठोरता–१०, आ० घ० ३ ४; वर्तनाक–२ ४१७५; दुहरा वर्तन तथा अनेक वर्णिता का अभाव; अपकिरणन ० ४४। हीरे मे ये तीन विशेषताएँ सभी खनिज पदार्थों तथा रत्नो से अधिक पायी जाती है—(१) यह सबसे अधिक कठोर है; इस कारण कोई भी पदार्थ इसको खुरच नही सकता; न यह किसी दूसरे पदार्थ से घिसा जाता है। (२) इसका वर्तनाक सबसे अधिक है; इसके

कारण इस के भीतर गया हुआ प्रकाश भीतर से पूरा-पूरा लौटकर आ जाता है अर्थात् प्रकाश का पूर्ण परावर्तन होता है, जिसके कारण इसकी दमक सब रत्नों से अधिक है; इस दमक को हीरक द्युति (चमक) नाम दिया गया हैं। (३) अपकिरणन भी इसमें सब रत्नों से अधिक पाया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि अच्छे कटे हुए हीरक खण्ड के शिखरवाले अनीक मे से झांक कर देखने से इसमें से इन्द्रधनुषी रगों की झिलमिलाहट खूब फूटती दिखायी देती है। गरुड पुराण में तो यहाँ तक लिखा है कि हीरे के किनारे टूटे हुए हों, उस पर बिन्दु और रेखाएँ भी हों, परन्तु, 'इन्द्रायुध'—इन्द्रधनुष—की सी लौ हो तो वह हीरा **धन, धान्य और पुत्रों का दाता होता है।**

वारितर—वर्तन के गुण की अधिकता के कारण हीरे को जब जल मे डुबो दिया जाता है तब भी इस की दमक उतनी ही दिखायी देती है जितनी कि वायु में रखते हुए थी—ऐसा दीखता है कि **मानो यह पानी में तैर रहा हो।** इसी प्रकाशीय गुण का यह परिणाम भी है कि जल या ब्रोमोफॉर्म या मिथाइलीन आयोडाइड में डुबोने पर उत्कृष्ट हीरा द्रव के तल से बहुत अधिक उभरा हुआ—ऊपर आया हुआ—दिखायी देता है। कम वर्तनाक के, इसके स्थान पर दिये जाने वाले सश्लिष्ट नीलम और सश्लिष्ट कटकिज आदि दूसरे खनिज, द्रव में डुबोने पर न तो इतने उभर कर आये दिखायी देते हैं और न इनकी वह चमक ही रहती है जो वायु में दिखायी देती है।

गरुड पुराण आदि भारत के प्राचीन ग्रन्थो में कहा है कि जो हीरा '**वारितर**' होता है वह सर्वोत्कृष्ट होता है। प्रतीत होता है कि उस प्राचीन युग में भी भारत के वैज्ञानिक हीरे की इस विशेषता से सुपरिचित थे—भले ही आज इनके कार्यकारण सम्बन्धों

का विश्लेषण लुप्त हो चुका है। शुक्रनीति मे भी 'वारितर' हीरे को सर्वोत्कृष्ट माना है।

वैज्ञानिक विश्वकोश' मे लिखा है कि जब हीरा–मिली तलछट में पानी मिलाकर उसको बहाया जाता है तो हीरे के छोटे-छोटे कण पानी पर तैरते है—इसका कारण यह है कि एक तो हीरा स्वय जलद्वेषी या जलविरोधी (hydrophobic) ; है दूसरे पृष्ठ तनाव (surface tension) तैराने से इसकी सहायता करता है। शेष जलस्नेही तलछट नीचे बैठ जाती है।

इसके फैलाव का गुणाक बहुत कम है और अत्यन्त **ऊँचे तापमान पर भी, तपाकर लाल कर देने पर भी, यह कठोर बना रहता** है—इसलिये औद्योगिक कामो मे इसका स्थान बहुत ऊँचा हो गया है। सन् १९४० से तो औद्योगिक हीरो की उपयोगिता इतनी बढ गयी है कि **अमरीकी सरकार के सुरक्षाविभाग ने इसको युद्ध का एक आवश्यक सामान** घोषित कर दिया है। अत्यधिक कठोरता के कारण रत्न हीरे अपनी चमक नही खोते और इसी गुण के कारण औद्योगिक हीरे उद्योगो के लिये उपयोगी बने रहते है।

प्राकृतिक रूप—हीरा घनाकार आठ तथा बारह पहलो का मिलता है। भारतीय हीरा आठ तिकोने पहलो का और ब्राजीली हीरा समातर असमचतुर्भुजीय (चौकोर) बारह पहलो वाला मिलता है। तिकोने पहलो पर तिकोने ही, जो सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की सहायता से ही दीख पड़े इतने बारीक, निशान या गढे होते है—जिनके किनारे और शिखर उस पहलू के किनारो व शिखर से उल्टी दिशा मे होते है कि जिस पर ये स्थित होते हैं। चौकोर पहलो के लम्बे कर्ण के समातर पट्टिया या धारिया होती हैं। फिर ये पहल कुछ-कुछ ऊपर को उभरे (उन्नतोदर) तथा इनके किनारे पैने न होकर, कुछ-कुछ गोल होते है। ये सारी विशेषताएँ कार्बन से हीरा बनते समय पडे भारी दबाव का परिणाम प्रतीत होती हैं।

कुछ हीरों को छोड़कर प्राय सभी हीरे बिजली की धारा को अपने भीतर से नही गुजरने देते परन्तु ताप को आसानी से गुजरने देते है—इसीलिये छूने में हीरे ठंढे लगते है।

सबसे अधिक कठोर होते हुए भी हीरे भंगुर, जल्दी टूट जाने वाले होते हैं। फर्श पर गिरने से हीरा यो ही चोट खा जाता है। कहते हैं कि दक्षिणी अफ्रीका में जब पत्थर का एक टुकड़ा ऐसा मिला कि जिसके हीरा होने की सम्भावना हुई तो उसको जाचने के लिये लुहार को दिया गया। उसने आव देखा न ताव झट अपने घन पर रख कर भारी हथौड़ा उस पर दे मारा और सिद्धकर दिया कि यह पत्थर हीरा नही है! इस प्रकार अनजाने ही एक हीरा हाथ से जाता रहा!

फिर यह कठोरता अलग-अलग स्थानों के हीरों में कम-अधिक होती है। बोर्नियो तथा आस्ट्रेलिया के हीरे अफ्रीकी हीरों से अधिक कठोर होते है। अफ्रीका से कुछ हीरे ऐसे भी मिले हैं कि जो हवा लगने पर कठोर हुए। फिर एक हीरे में कही कम कठोरता और कही अधिक कठोरता होती है। जैसा कि हम पहले लिख आये है कठोरता का अर्थ इतना ही है कि हीरा किसी ज्ञात वस्तु से **खुरचा नहीं जा सकता**। परन्तु यह अपने पहलों के **समान्तर तलों पर सरलता से चिर जाता है**। अपने इस गुण के कारण ही इसको काट लेना सम्भव हुआ है।

रंग—आभूषण के रूप में काम आने वाला हीरा पारदर्शक तथा लगभग रंग-रहित होता है। यह एक प्रकार से दोषरहित होता है। थोडा सा नीलापन लिये हुआ परन्तु रगहीन और पार-दर्शक हीरा सबसे अधिक मूल्य का आँका जाता है। पीली आभा-वाले हीरे कम आबदार होते हैं। हरे आराग वाले भी हीरे मिलते हैं। भूरे, बादामी रग के हीरे दक्षिणी अफ्रीका से मिलते हैं।

माणिक्य तथा नीलम के सरीखे चटकीले रग के हीरे नही मिलते। प्राचीन ग्रन्थो मे रगो की दृष्टि से हीरे आठ प्रकार के बताये है—१ अत्यन्त सफेद २ कमलासन ३ वनस्पति के समान हरे रग के ४ गेदे के समान वासन्ती रग के। ५ नीलकठ के कठ-सदृश नीले ६ श्यामल ७ तेलिया और ८ पीत हरा।

उपयोगिता की दृष्टि से—जवाहरातो की श्रेणी मे न आने वाले हीरे **औद्योगिक हीरे** कहलाते है। इनमे से कुछ स्वच्छ, पारदर्शक तथा शेष अपारदर्शक होते है। सामान्यतया इन का रग आकर्षक नही होता। रत्नो की कोटि के हीरो को चिरकालीन प्रयोग के बाद भी बदलना नही पडता परन्तु औद्योगिक हीरे प्रयोग से घिस कर नष्ट हो जाते है और उन्हे बदलना पडता है। **बोर्ट** (Boart) कुछ-कुछ भूरा और **कार्बनेडो** (Carbonado) सर्वथा काला हीरा होता है। ये दोनो औद्योगिक कामो में आते हैं।

आजकल खानो मे से जितने हीरे निकाले जाते हैं उनमे औद्योगिक हीरो की मात्रा ही बहुत अधिक होती है।

प्राप्तिस्थान—भारत मे हीरा अति प्राचीन युग से ज्ञात है। प्राचीन ग्रन्थों में इसके औषधीय तथा ज्योतिष सम्बन्धी गुणो का वर्णन मिलता है। भारत मे हीरो की प्रसिद्ध खाने दक्षिण में थी—मद्रास प्रदेश की पिनेर नदी से लेकर बुन्देलखण्ड की सोन तथा खान नदियो तक से उस समय हीरे मिलते थे। यहाँ नदियो की रेत तथा ककडो से हीरा खोज निकाला जाता था। गोलकुण्डा हीरो का बाजार था। **आजकल** मद्रास, मध्य प्रदेश, उड़ीसा तथा गुजरात की खानो से २००० कैरेट से ४००० कैरट हीरे वार्षिक निकाले जाते है। बोर्नियो मे भी हीरे की खाने प्राचीन काल मे विद्यमान थी।

ब्राजील मे हीरे की खाने १७२५ ई० मे चालू की गयी। परन्तु

उस समय वहां भी पुर्तगाली सरकार स्वत्वाधिकार के रूप में इतना धन ले लेती थी कि हीरा निकालने का उद्योग पनप नही सका। सन् १८३४ में स्वतत्र होने पर यहाँ यह उद्योग फिर चमका। ब्राजील में हीरे की खाने मीना जेरी तथा बाहिया प्रदेशों में है— हीरे की कार्बनेडो किस्म तो लगभग यही पर ही मिलती है।

१८६७ में दक्षिण अफ्रीका मे हीरो की उपस्थिति का पता लगा। आज तो दक्षिण अफ्रीका ही हीरों का मुख्यतम उत्पादक देश है। यहा का किम्बरली नगर हीरों के उत्पादन का सबसे बडा केन्द्र है। अफ्रीका के दूसरे भागो—रोडेशिया, गोल्डकोस्ट, बैल्जियन कागों आदि स्थानों से भी हीरे मिलते है। आस्ट्रेलिया के न्यू साउथ वेल्स से हीरे मिलते है, परन्तु उत्पादन बहुत कम है। दक्षिणी अमेरिका से भी हीरे निकलते है। विश्वभर मे एक वर्ष मे जितने हीरे निकाले जाते है—उनका ९५ प्रतिशत भाग अब दक्षिणी अफ्रीका से निकलता है।

सन् १९६७ ई० में हीरे का विश्व उत्पादन का कुल योग ४२३८८००० कैरेट हुआ था, इसमें से ३३२९५००० कैरेट औद्योगिक तथा ९०९३००० कैरेट रत्न-हीरे थे। रत्न-हीरों का ८१ ९ प्रतिशत भाग दक्षिण अफ्रीका से निकाला गया था। भारत से केवल ७००० कैरेट हीरे मिल सके थे।

आजकल हीरे के उत्पादन का नियन्त्रण लगभग पूरे रूप में De Beers Consolidated Mines—नाम की कम्पनी के हाथ मे ही है; यह कम्पनी कुछ खाने तो स्वय चलाती है और शेष खानों के हीरे भी यही ले लेती है।

आजकल लन्दन से ही विश्वभर के हीरो के व्यापारी अनघड हीरे खरीदते है। **भारत और संयुक्त राष्ट्र अमरीका** हीरो के सबसे बड़े खरीदार है। अमरीका में इनका लेन देन इतना बढ़ गया है

कि वहाँ हीरा काटने वालो की संख्या बहुत बढ गयी है।

विश्व के प्रसिद्ध हीरे—जिन हीरों ने विश्व मे नाम कमाया है उनकी सख्या भी कम नही है। इस छोटी सी पुस्तक में उनके विस्तृत इतिहास तो नही दिया जा सकता—परन्तु कुछ सामान्य परिचय देना कम रोचक नही होगा।

कोहेनूर हीरा—१४ वी सदी मे भारत के मुगल बादशाहों की सम्पत्ति था। उस समय इसका भार १८६ १ कैरेट था। १७३९ मे इसको नादिरशाह अपनी लूट मे दिल्ली से ईरान ले गया। उसके मरने पर यह फिर भारत मे आ गया और क्रमश कई भारतीय राजाओ के पास रहा। अन्त मे महाराजा रणजीतसिंह के पास रहा और उसके उत्तराधिकारियो से ईस्ट इ डिया कम्पनी ने ले लिया। कम्पनी ने इसको महारानी विक्टोरिया को भेंट कर दिया। १८६२ में इसको पुन काटा गया और तब से इसका भार १०६ १ कैरेट है, जो ब्रिटिश शाही परिवार की निजी सम्पत्ति है।

पिट या रीजेंट हीरा—मूल रूप मे ४१० कैरेट का यह प्रसिद्ध हीरा हैदराबाद दक्षिण की गोलकुण्डा के समीप स्थित एक खान से मिला था। पहले पहल इसको उस समय मद्रास के गवर्नर पिटने खरीदा। ज्वलन्त काट के पश्चात् इसका भार १३६ ९ कैरट रह गया। काटने मे २ वर्ष तथा ५००० पौड लगे थे। १९१७ में इसको फ्रास के रीजेन्ट ने खरीद लिया। अब यह लूवर की गैलरी में रखा है। इसकी कीमत ४८०००० पौंड आकी गयी है।

महान् मुगल—यह हीरा ज्ञात भारतीय हीरो में सबसे बडा है। सन् १६५० मे कौलूर की खानो से मिलाथा। मूल तोल ७८७ ५ कैरट था—गुलाबी काट के पश्चात् २४० कैरट रह गया था। १६६४ मे इसे औरगजेब के खजाने मे देखा गया था। अब इसका पता नही है कि कहा है।

ओर्लिफ हीरा भी एक ऐतिहासिक हीरा है। यह बड़ा रत्न कभी रूस के राजदंड के ऊपरी सिरे पर लगा हुआ था। यह गुलाबी काट का भारतीय हीरा है। इसका भार लगभग १९३ कैरेट है। किसी फ्रासीसी सिपाही ने इसको मैसूर के एक मन्दिर की मूर्ति की आँख से चुरा लिया था। उससे क्रमश चलता-चलता यह राजकुमार ओर्लिफ के हाथ ९०,००० पौंड में लगा था।

कुलीनन हीरा—सन् १९०५ में दक्षिण अफ्रीका की प्रीमियर खान से निकला १०×६.५×५ सैंटीमीटर आयतन का ३१०६ मैट्रिक कैरेट का यह हीरा सबसे भारी हीरा है। १९०७ में यह इंग्लैंड के राजा एडवर्ड सप्तम को भेंट किया गया। इसके दोष हटाने के लिये इसके पहले दो टुकड़े किये गये :—इनमें से पहला ५३०.०२ कैरट का 'अफ्रीका का तारा' कहलाया। कुलीनन द्वितीय समायत आकार का ३१७४ कैरट तोल का है।

होप हीरा—रंगीन हीरों में सबसे बड़ा हीरा है। इसका भार ४४५ कैरट है। इसका रंग हरापन लिये हुआ नीला है। सन् १६४२ में टैबर्नियर ने भारत से इसे प्राप्त किया था। फ्रांसीसी राजमुकुट से होता हुआ यह अन्त में लन्दन के एक धनी व्यापारी होप के संग्रहालय मे स्थान पा गया। १८६७ में उसका यह संग्रह बिका; उस समय यह अमरीका चला गया। वहाँ से भी एक भारतीय के हाथ में गया परन्तु अब एक अमरीकन महिला की सम्पत्ति है। कहते हैं कि यह हीरा अपने मालिक के लिये अशुभ रहता आया है।

रत्न-हीरे के तीन प्रकार—गरुड़ पुराण आदि प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के अनुसार, रत्न-हीरा तीन प्रकार का होता है—अर्थात् नर, नारी और नपुंसक हीरा। **नर हीरा** अत्यन्त चमकीला और इन्द्र धनुषी लौ देता है। जल में डालने पर भी उसकी चमक ऊपर

तैर आती है। यह रेखाओ और बिन्दुओ से रहित अष्ट कोणी तथा श्वेत रग का होता है। **नारी हीरा** चपटा कुछ-कुछ गोल और आयताकार होता है। यह छ कोण होता है, इसमे बिन्दु तथा रेखाएँ भी होती हैं। **नपु सक** हीरा गोल होता है—उसमे कोण तथा पैने किनारे नही होते तथा कुछ अधिक भारी होता है। इनमें से नर हीरा सभी के लिये उपयोगी है। फिर श्वेत हीरे को ब्राह्मण, फिटकरी के रग के लाल हीरे को क्षत्रिय, पीले रग के हीरे को वैश्य और काले रग के हीरे को शूद्रवर्णी हीरा कहते हैं।

शुभ तथा उत्कृष्ट हीरा—जो हीरा बहुत हलकी नीली झाँई के साथ सफेद हो, अथवा नीली और लाल किरण देता हुआ सफेद हो; काले रग के बिन्दुओ से रहित हो वह शुभ तथा उत्कृष्ट माना गया है। एक अन्य ग्रन्थ के अनुसार, शख के समान सफेद अथवा बिल्लौर के समान चमकता, चन्द्र के समान रोचक, चिकना हीरा सर्वोत्तम वर्ण का हीरा होता है। चारो ओर लाल किरणे फैंकता हुआ सफेद हो, अथवा लाल-पीला सफेद अथवा खरगोश की आँख के रग का हो वह दूसरे दर्जे का (क्षत्रिय) होता है। जो पिलाई लिये हुआ सफेद हो, साण पर चढा कर तेज करके तेल या पानी से बुझाई हुई तलवार की-सो चमक वाला हीरा तीसरें दर्जे का (वैश्य) हीरा होता है। काली झाई वाला सफेद हीरा शूद्रवर्ण का माना जाता है। वैसे यह भी असली हीरा होता है।

हीरे के दोष—प्राचीन ग्रन्थो तथा अर्वाचीन जौहरियो के अनुसार हीरें मे निम्नलिखित बाते होना उसे ऐबदार बनाता है। इन के कारण उसका मूल्य घट जाता है —

१ **छींटा या बिन्दु**—हीरे पर जल के समान बिन्दु या छीटा होना उसका ऐब है। यह छीटा लाल हो तो सर्वथा त्याज्य है; छीटा काले और सफेद का रग का भी हीरे को ऐबदार बना देता है।

२ **काक पद**—कौवे के पैर के समान काले बिन्दु होना 'काक पद' दोष कहलाता है; ऐसे हीरे को **मृत्युदायी** बताया है।

३ **'यव' (जौ) दोष**—जौ के आकार के चार रगों के बिन्दु हो सकते हैं—श्वेत, लाल, पीला और काला। जौ बिन्दु श्वेत हों तो वह हीरा उत्तम माना गया है। शेष अधम हैं।

४ **मलदोष**—हीरे की धार, कोना तथा बीच में—तीन स्थानों पर मल हो सकता है—मल रहना मलदोष है। यह भी अशुभ है।

५. **रेखा-दोष**—हीरे पर चार प्रकार की रेखाएँ हो सकती है—(१) बाँये भाग से जाने वाली (२) दक्षिण भाग से जाने वाली (३) रेखा को पार करने वाली और (४) रेखा को पार-करके ऊपर को जाने वाली रेखा। इनमें से वाम भाग से जाने वाली रेखा उत्तम तथा शुभ मानी जाती है। इनके अतिरिक्त, तेलियापन, जर्दी, भूरापन, खड्डा, चीर, चमक न होना और अधिक कडापन भी अवगुण हैं। जो हीरा सामान्य हीरे से अधिक कठोर हो उस पर अनीक बनाने में अधिक कठिनाई होती है।

बनावटी हीरे—गरुडपुराण तक में कहा है कि हीरे की बढी-चढी कीमत और उसका आदर देखकर चतुर-चालाक लोग नकली हीरे बनाने का यत्न करते है। गरुडपुराण के ६८ वे अध्याय के अनुसार—

अयसा पुष्परागेण तथा गोमेदकेन च।
वैदूर्यस्फटिकाभ्याँच काचैश्च पृथग्विधै।
प्रतिरूपाणि कुर्वन्ति वज्रस्य कुशला· जना॥

अर्थात् लोहा, पुखराज, गोमेद, वैदूर्य, स्फटिक तथा काच से नकली हीरे हुशियार लोग बना लेते हैं, इसलिये ग्राहक को भली-भाति परीक्षा करके असली हीरा खरीदना चाहिये।

हम पहले बता आये है कि किसी रत्न के कृत्रिम अथवा मनुष्य-

निर्मित रत्न चार प्रकार के होते है, १ सश्लिष्ट २ पुनर्निर्मित ३ अनुकृत और ४ द्विक अथवा त्रिक।

व्यापार की दृष्टि से लाभदायक **सश्लिष्ट** हीरा अभी तक नही बनाया जा सका है। परन्तु इस दिशा मे वैज्ञानिको का यत्न लगातार चालू है। पहले पहल फरवरी १९५५ मे जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी ने १ लाख वायुमडलो के दबाव से अधिक दबाव तथा २७६० डिग्री शतॉश ताप पर ग्रैफाइट के कणों से सश्लिष्ट हीरा बनाया। कइयो का कथन है कि इस कम्पनी ने **खांड** से ऐसे हीरे बनाये हैं। कुछ भी हो, अभी तक ये हीरे केवल औद्योगिक कार्यों के लिये उपयोगी बन पाये हैं—'रत्न' नही बन सके हैं। कहते है कि रत्न हीरे बन तो सकते हैं परन्तु उनको बनाने का खर्च अत्यधिक है।

रूस में हीरा बनाने की मशीन

कहते हैं कि अब रूसी वैज्ञानिको ने अधिक खर्च की इस रुकावट को दूर कर लिया है। अक्तूबर १९७० के 'नवनीत' (हिन्दी मासिक, बम्बई) के पृष्ठ ३९ पर प्रकाशित लेख के अनुसार— **लोहे का एक स्टोव जैसा दीखने वाला यत्र, पिरामिड जैसी चोटी, चौकोर आधार, भीतर जेनन नामक एक गैस का शक्तिशाली स्रोत।'** यह है नकली हीरा तय्यार करने की मशीन। इसमे 'यह जो सामने छोटा-सा छिद्र है, इसमे जरा झाकिये। **लाल-लाल छोटा-सा दाना जो आप अब देख रहे है—वह हीरा तय्यार हो रहा है।**"

कुछ भी हो, अभीतक सश्लिष्ट अथवा रासायनिक विधि से से तय्यार हीरे असली हीरे की बराबरी में नही खडे हो सके है। अतएव **जौहरी के सामने इनकी कोई समस्या नही है।**

असली रत्न के छोटे-छोटे टुकडो को गलाकर आपस मे जोडकर निक्षेप रूप मे जमाकर जो रत्न बनाये जाते है उन्हे 'पुनर्निर्मित'

रत्न कहते है। अभी तक हीरा 'पुनर्निमित, भी नही किया जा सका है।

हा, सश्लिष्ट रूटाइल (rutile) तथा संश्लिष्ट नीलमों से द्विक हीरे बनाए गये है।

परीक्षा और पहचान—हीरा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रंग रहित अथवा लगभग रगरहित, तथा पारदर्शक रत्न है। हीरे का भ्रम डालने वाले अथवा उसके स्थान पर नकली हीरे के रूप में चलाये जाने वाले मुख्य-मुख्य रत्न निम्नलिखित होने सम्भव है— (१) सश्लिष्ट रूटाइल (२) स्ट्रौशियम टिटेनेट, असली तथा संश्लिष्ट गोमेद; प्राकृतिक रग रहित नीलम, बिल्लौर और काच से निर्मित अनुकृतिया आदि।

हमने ऊपर गरुडपुराण का जो श्लोक उद्धृत किया है तथा फेरुक्त रत्नपरीक्षा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हीरे की परीक्षा की समस्या कॉच और स्फटिक के अनुकृत रत्नों तथा गोमेद, पुखराज तथा बैरूज आदि कुछ प्राकृतिक रत्नों के कारण उपस्थित होती है।

आमतौर पर जौहरियों का तो यही ख्याल रहता है कि हीरे की केवल मात्र **चमक** को ही देखकर असली हीरे को पहचान लेना कठिन नही होता। फिर भी जौहरी कितनी बार धोखा खा जाते है। इसलिये सच्चे हीरे की पहचान के लिये कुछ सूचनाओ का उल्लेख करना उचित होगा।

(१) हीरे की सब से अधिक विशेष पहचान चमकीले गोल 'मनोहारी' आकृति के हीरक-खण्डों की मेखला के उस तल पर कि जिस पर पालिश (प्रमार्जन) नही हुआ है, सतह का **अद्वितीय तन्तुविन्यास अथवा रेशों की बनावट** है। हीरे को गोल करते समय

खराद के प्रयोग से हीरे की सतही सूरत ऐसी बन जाती है कि जैसी दूसरे किसी रत्न की नही होती ।

(२) काटे-सवारे हीरक- खण्ड की मेखला के ऊपर अथवा इस के समीप हीरे की मूल त्वचा तथा कुछ 'प्राकृतिक' अ श भी बचे रह जाते है । इन प्राकृतिक अ शो पर गढे अथवा तिकोनी आकृतिया दिखायी देती है जो क्रमश हीरो के समातर असम चतुर्भु ज और त्रिभुजाकार पहलो पर पायी जाती हैं । ये निशान भी किसी नकली हीरे के पहलो पर नही दिखायी देते ।

(३) अच्छे काट के हीरे की चमक अपनी विशेष दमक होती है । इसका नाम 'हीरक द्यु ति' है । ऐसी दमक और किसी रत्न में नही पायी जाती । **गोमेद** में दमक पर्याप्त होती है । परन्तु ध्यान से देखने से पता लग जाता है कि इसको दमक हीरक-चमक न होकर विरोजा जैसी चमक है ।

(४) कठोरता की परीक्षा, जौहरी लोगों मे अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही परीक्षाविधि है । जैसा कि सबको मालूम है, हीरा सबसे अधिक कठोर खनिज है—मनुष्य ने कड े पदार्थो को घिसने के लिये जो दो कृत्रिम पदार्थ बनाये है, हीरे के सिवा, उन्ही दो से माणिक्य और नीलम पर खरौंच पड सकती है । बस तो कृत्रिम नीलम (असली को क्षति ग्रस्त होने क्यो दिया जाय ?) के एक टुकड े को उस हीरक-खण्ड की मेखला की नोक से खरोंचिये जिसकी आप परीक्षा कर रहे है । यदि नीलम पर हलकी सी भी खरौंच पड जाये तो आप जिस खण्ड की परीक्षा कर रहे हैं वह असली हीरा है—अन्यथा नही ।

परन्तु सावधान—बहुत जोर न लगाइये, हीरा कठोर होते हुए भी भगुर होता है—कही नोक न टूट जाय ।

(५) हम पहले बता आये है कि हीरक खण्ड मे गया प्रकाश

लगभग पूरा-का-पूरा भीतर से लौट आता है—आप जिस रत्न खण्ड की परीक्षा कर रहे है उसके पीछे अगुली रख कर उसको सामने से देखिये—अंगुली दिखायी नही देगी। खिड़की में एक छिद्र के सामने रत्नखण्ड को रखिये; हीरक खण्ड में से यह प्रकाश आप की ओर न आकर दूसरी ओर ही लौट जायेगा ; आप को दिखायी नही देगा।

(६) उच्च अपवर्तन के कारण ज्वलन्त काट हीरे की चोटी पर वाले फलक से इन्द्रधनुष के-से रगो की चमक दिखायी देती है। यह दमक हीरे में सब रत्नो से अधिक पायी जाती है। रंग हीन रत्नों में से गोमेद में ही दमक पायी जाती है।

परन्तु **श्वेत गोमेद** में दुहरा वर्तन होता है—इसलिये इसके पृष्ठभाग के अनीक दुहरे दिखायी देते हैं। फिर क़ठोरता के परीक्षण से तो गोमेद का भ्रम मिट ही जाता है।

(८) सीसे युक्त कांच के बने नकली हीरे अब बहुत आने लगे हैं ; परन्तु हीरों का सच्चा पारखी उनसे धोखा नही खा सकता। कांच की द्युति (चमक) हीरे की चमक से भिन्न है ही, काँच के नकली हीरो के भीतर बुलबुले होते है। फिर वह अत्यन्त नरम होता है और छूने में हीरे की अपेक्षा गरम लगता है।

(६) इनके अतिरिक्त रत्नों के रवों की आकृति, उनके वर्तनांक आदि मे अन्तर होते है। जाँच करने की इस प्रकार की सूक्ष्म तथा यत्रसाध्य विधियो का वर्णन हम अधिक विस्तृत पुस्तक के लिये छोडते है।

सच्चे हीरे को घी, दूध या गरम जल में डालने पर उनका ठढा हो जाना ; सूर्य के सम्मुख रखने पर उसमें से इन्द्रधनुषी झिलमिल दिखायी देना—आदि परीक्षाये इन्ही वैज्ञानिक विधियो के अन्तर्गत है—हमारे पाठक इन्हें भली-भाँति समझ सकते हैं।

रोगों में प्रयोग—भावप्रकाश मे लिखा है कि हीरे की भस्म शरीर को पुष्ट करती है, बल तथा वीर्य देती है, सुख कारक है, एक प्रकार से सभी रोगों की नाशक है। हीरे की पिष्टी कभी नही खानी चाहिये। शुद्ध रीति से बनायी हुई भस्म ही का प्रयोग करना चाहिये। हृदय रोग, राजयक्ष्मा, प्रमेह, पाण्डु रोग, नपु सकता, सूखा आदि रोगो मे दी जाती है।

रत्न चिकित्सा विधि' से हीरे की गोलियो का प्रयोग इन रोगों मे किया जाना चाहिये—रक्तातिसार, अधापन, स्वरभग, मोतिया-बिन्द, रेगता हुआ पक्षाघात, कष्टदायक ऋतु, भगन्दर, हिस्टीरिया, श्वेत प्रदर, फेफड े के रोग, फुफ्फुस प्रदाह।

दैवी शक्ति—भूत-प्रेतादि की व्याधा तथा विषभय के निवारणार्थ हीरे का धारण करना बताया गया है। कामक्रीडा मे अशक्त व्यक्ति को हीरा पहिनना चाहिये। ज्योतिष के अनुसार हीरा कौन कौन व्यक्ति धारण करे—इसके निर्णय के लिये इस पुस्तक का दूसरा भाग देखिये (पृष्ठ सं० ५३–६३)

शुक्र ग्रह के प्रभाव मे अर्थात् जब सूर्य वृष राशि (१५ मई से १४ जून तक) मे और तुला (libra) राशि (१५ अ० से १४ नवम्बर) मे हो—उस समय जन्मे व्यक्तियो को हीरा पहिनना चाहिये। इसको निम्नलिखित मत्र के जाप के साथ धारण करना लिखा है—ऊँ **अन्नात् परिस्रुतो रस ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्र पय सोम प्रजापति। ऋतेन सत्यमिन्द्रिय विपान शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिद पयोमृत मधु॥**

हीरे का बदल—गोमेद (zircon) है। चाँदी मे जडवा कर मोती भी, हीरे के स्थान पर पहिना जा सकता है।

लोग मानते आये हैं कि हीरा धारण करने से परस्पर सद्भावना बढती है, क्रोध शात होता है। धारणा शक्ति बढती है। विवाह

सम्बन्ध स्थायी बनते है। यूरोप तथा अन्य पश्चिमी देशो में हीरे की अंगूठियों का आदान-प्रदान इसी प्रयोजन से खूब प्रचलित है। वाराही सहिता में लिखा है कि पुत्र की इच्छा रखने वाली स्त्री को साधारण हीरा कभी न पहिनना चाहिये, सिघाडा, त्रिपुट धान्य या श्रोणि के आकार का हीरा ही ऐसी स्त्रियों के लिये शुभ है।

शनिरत्न—नीलम

७

नीलम के दो भेद : बढ़िया नीलम की विशेषताएँ : असली नकली की पहचान का रोचक तरीका : शीघ्र प्रभावी रत्न : गंज और रूसी का इलाज : आधियों का शमक रत्न।

विविधनाम : संस्कृत—नील, शौरिरत्न, इन्द्रनील, तृणग्राही, नीलमणि आदि, **हिन्दी-पंजाबी**—नीलम ; **उर्दू-फारसी**—नीलम, याकूत कबूद; अ ग्रेजी—Sapphire

भौतिक गुण—कठोरता–९, आ० ध०–४ ०३, वर्तनाक—१.७६ १·७७; दुहरावर्तन—० ००८, द्विवर्णिता अतिस्पष्ट, बिना सूक्ष्मदर्शक के भी दृश्य; भगुर; अपकिरणन हीरे की अपेक्षाकम होता है, इसीलिये दमक तथा जाज्वल्यता हीरे से कम होती है और इस आधार पर भी श्वेत नीलम तथा हीरे मे अन्तर बताया जा सकता है।

कुरुन्दम समूह—माणिक्य की तरह नीलम भी कुरुन्दम समूह का रत्न है। वास्तव में तो लाल कुरुन्दम को तो 'माणिक्य' पुकारते है—इसके अतिरिक्त अन्य सभी रगों के कुरुन्दम वर्ग के रत्नों को नीलम कहते है—जैसे, श्वेत नीलम, हरा नीलम, बैंजनी नीलम आदि। परन्तु 'नीलम' नाम विशेषतया आसमानी, चमकीले, गहरे

नीले, मखमली नीले और भुट्टे के फूल के रग के नीलम को दिया जाता है।

प्राप्ति स्थान—(१) **काश्मीर** (भारत) का नीलम सर्वश्रेष्ठ होता है—इसका रग मोर की गर्दन के रग का होता है। इसमें यदि एक बिन्दु रग भी हो तो वह सम्पूर्ण नग को रगीन रखता है। परन्तु यदि डक, पोल व दुरगेपन से रहित मिले तभी उसका नग सुन्दर बनता है। फिर इस पर विजातीय पदार्थ भी चिपका रहता है। (२) **बर्मा** के नीलम मे हरापन कम तथा सुन्दर नीला रग होता है। विजातीय पदार्थ चिपका न होने के कारण नग बनाने मे सुविधा रहती है। (३) श्री **लंका** का नीलम ऊपर लिखे दोनों नीलमो से घटिया दर्जे का होता है। इसमे लाल रग की आभा होती है—श्याम आभा भी बहुत होती है। (४) **स्याम** देश के नीलम में कृष्णवर्ण की आभा तथा हरापन अधिक होता है। रग गहरा होने के कारण यह काला दिखायी देता है। इसमे कठोरता व चिकनाई अधिक होती है। (५) **सलेम** (दक्षिण भारत) के नीलम मे हरापन स्याम के नीलम से अधिक होता है। पीला और नीला रग मिश्रित रहता है। (६) **आस्ट्रेलिया** के नीलम गहरे नीले रग के होते हैं। (७) **मोटाना** (अमरीका) केनीलम की चमक धातु की-सी चमक होती है। **रोडेशिया** (अफ्रीका), तथा **त्रोयत्स्क मीस्क** (रूस) मे भी नीलम मिलते है—पर घटिया दर्जे के होते है।

पुखराज, माणिक्य तथा नीलम कभी-कभी एक ही क्षेत्र में पाये जाते है। इसलिये इनके क्रमश श्वेत, लाल और नीले रगो का एक दूसरे मे मिश्रण हो जाता है। हा, इनकी कठोरता मे अन्तर होता है। पुखराज से माणिक्य और माणिक्य से, नीलम अधिक कठोर होता है।

कुछ ऐतिहासिक नीलम—सुन्दरतम नीलम रत्न भारत के

काश्मीर राज्य से मिलते हैं। नीलम की खाने वहाँ जांसकर पहाडी में १४६४० फुट की ऊँचाई पर सूमजाम नामक गाव के समीप स्थित है। सम्भवत वडे-वडे ज्ञात नीलम भारत की खानों से ही मिले है। रीवां राज्य के खजाने में जो नीलम १८२७ में विद्यमान था, वह सबसे वडा और तोल में ६५१ कैरट था। जार्डीन डेस प्लाटीन के सग्रह में दो सुन्दर नीलम है, इनमें से एक रास्पली नाम का, वहुत ही सुन्दर और दोष रहित नीलम १३२ कैरेट तोल का है। दूसरा नीलम २ इच लम्बा और १ ५० इच चौडा है, डेवन शायर के ड्यूक के पास एक सुन्दर ज्वलन्त काट का नीलम १०० कैरट तोल का है। ब्रिटिश म्यूजियम मे खनिज विभाग मे सोने की पिन पर रखी हुई भगवान् बुद्ध की मूर्ति एक ही नीलम रत्न को काट कर बनायी गयी है। सवसे वडा लगभग १३२ कैरेट तोल का भूरे रग का नीलम पेरिस के खनिज सग्राहलय में है। लकडी के चम्मच बेचने वाले किसी व्यक्ति को यह बगाल से मिला था। कभी स्काच रानी मेरी के पति डार्नले के अधिकार मे रहा एक हृदय के आकार का नीलम अव शाही ताज मे है; यह १५७५ ई० का वताया जाता है। दो वड़े नीलम एक पादरी ने नैपोलियन को भेट किये थे। ये फिर लुई नैपलियन तृतीय की सम्पत्ति बने।

दो भेद—भारतीय ग्रन्थो के अनुसार नीलम दो प्रकार का होता है—(१) जलनील और (२) इन्द्र नील। जिस नीलम के भीतर सफेदी हो और चारो ओर नीलिमा, लघु हो, वह जलनील कहाता है और जिस नीलम के भीतर श्याम आभा हो, वाहर नीलिमा हो, अपेक्षया भारी हो वह इन्द्रनील कहलाता है। वस्तुत तो इसका रग नीले और लाल का मिला हुआ अर्थात् बैंगनी होता है।

श्रेष्ठ नीलम—वह है कि जिसमें सात विशेषताएँ हो—१. दूसरे द्रव्य की परछाई को न लेकर अपनी चमक से उसको चमकाने

वाला हो अथवा एक ही रग का दिखायी दे ; २ दड़कदार हो, ३ चिकना हो, ४ पारदर्शक चमक का हो , ५ जिसका शरीर गठा हुआ हो ; ६, छूने मे मुलायम लगे और जिसके भीतर से किरणे फूटती प्रतीत हों नीलम मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण की क्रमश श्वेत, लाल, पीली और काले रग की छाया होती है।

पूर्णिमा के दिन खूब फैली हुई चाँदनी मे खडी हुई गौरवर्ण की सुन्दर स्त्री के हाथ मे स्वच्छ दूध से भरा कटोरा दे और उस पात्र पर नीलम का प्रकाश डाले ; यदि नीलम अपने प्रकाश से दूध, दूध के पात्र और सुन्दरी आदि पर तत्काल नीलिमा उत्पन्न कर दे तो नीलम उत्तम जाति का समझना चाहिये उत्तम नीलम की एक विशेषता यह भी है कि तिनका उसके समीप लाने पर, उससे चिपक जाता है।

नकली नीलम—माणिक्य के समान नीलम के स्थान पर भी सश्लिष्ट नीलम, नीले रग की सश्लिष्ट कटकिजमणि, तथा कॉच की अनुकृतियो का प्रयोग किया जाता है।

माणिक्य के प्रकरण मे असली-नकली माणिक्य की पहचान के जो तरीके दिये गये हैं—वही यहा भी प्रयुक्त करने चाहिये। कृत्रिम नीलम मे रगो की मुडी हुई (वक्र) पट्टिकाये होती हैं—असली नीलम मे ये धारिया सीधी होती है। श्री लका के नीलम मे 'पर' पाये जाते है।

रोगो मे प्रयोग—आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति के अनुसार, नीलम तिक्त रसका, और कफ, पित्त तथा वायु के उपद्रवो को नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त यह दीपन, हृद्य, वृष्य, बल्य और रसायन है। मस्तिष्क की दुर्बलता, हृदय रोग, क्षय, खासी, दमा तथा कुष्ठ रोगो मे इसका प्रयोग करते है।

रत्न चिकित्सा पद्धति के अनुसार बनायी हुई नीलमणि की

गोलियो का प्रयोग—बैंगनी रग की कमी से उत्पन्न रोगों में किया जा सकता है। गज, मूत्राशय, रूसी, जलोदर, खूजली, मृगी, वृक्क रोग, मस्तिष्क झिल्ली-प्रदाह, अधकपाली का दर्द, कर्णमूलप्रदाह, स्नायुशूल, सधिवात, शियाटिका (कटिशूल), रसौली आदि ऐसे रोग है।

दैवी शक्ति—ज्योतिष के अनुसार नीलम के धारण के सम्बन्ध में इसी पुस्तक के पृष्ठ ५३ से ६८ तक देखिये। कहते हैं कि दिल पर धारण करने से यह उसको शक्ति प्रदान करता है। बौद्धों का विचार है कि इस के धारण करने से मन प्रशान्त होता है, बुरे विचार जाते रहते है। शनि के प्रभावाधीन व्यक्ति अर्थात् १५जनवरी से १४ फरवरी तक अवधि मे, जबकि सूर्य कुम्भ राशि में रहता है, जन्मे व्यक्ति इसको धारण करते है। कहते है कि **यह रत्न धारण करने के पश्चात् कुछ ही घंटो में अपना प्रभाव दिखाने लगता है।** धारण करने के बाद यदि किसी को बुरे स्वप्न आने लगे या अन्य कोई अनिष्ट हो गया हो तो नीलम उतार देना चाहिये।

नीलम धारण करने का मत्र इस प्रकार है—"ॐ ! **शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु न।** नीलम पॉच रत्ती का या सात रत्ती का लेना चाहिये। इसका वदल **पन्ना** भी है।

राहुरत्न—गोमेद

: ८

तीन किस्म के गोमेद ; हीरे जैसी चमक-दमक और सजधज का रत्न; जांच के प्राचीन तथा नवीन तरीके चर्मरोगो में विशेष लाभदायक ; हृदय तथा बुद्धि का भी बल वर्धक।

विविधनाम—संस्कृत-गोमेद, गोमेदक, पिग स्फटिक, राहुरत्न,

हिन्दी-पंजाबी—गोमेद; **उर्दू-फारसी**—जरकूनिया या जारगुन ; **अरबी**—जारकुन (सिदूरी), **अंग्रेजी**—Zircon,

भौतिक गुण—कठोरता-७ ५ तक। आ० घ०-४ ६५ से ४ ७१ तक। पारदर्शक, पारभासक तथा अपारदर्शक भी। हीरक द्युति। वर्तनाक—१ ९३-१ ९८; दुहरा वर्तन ० ०६; अपकिरणन ० ०४८ (काफी अधिक)

गोमेद जिर्कोनियम का सिलिकेट लवण है ; इसमें थोडी मात्रा मे दूसरी दुर्लभ मृत्तिकामे भी पायी जाती है। यह सबसे अधिक मनोरजक रत्न है। लगभग सभी रगो मे मिलता है। यह हरे, सुनहरे पीले और गहरे लाल रग मे सबसे अधिक आकर्षक होता है। इनके अतिरिक्त यह भूरे, हलके हरे, तथा आसमानी रग मे भी मिलता है। इसका रगहीन विभेद हीरे के स्थान पर काम मे लाया जाता है और सबसे अधिक प्रसिद्ध है, यह हलके आसमानी रग मे मिलता है, रगो के कारण इसको देखकर, हीरा, कुरुविन्द, कटकिज आदि का भ्रम हो सकता है। गोमेद या जर्कन के नाम से प्रसिद्ध रत्नो के गुण एक दूसरे से इतने भिन्न होते हैं कि इसके तीन वर्ग किये गये हैं—१ उच्च वर्ग २ मध्यवर्ग तथा ३ निम्नवर्ग। तीनो प्रकार के गोमेदो के कठोरता, आ० घ०, प्रकाशीय विशेषताएँ तथा ताप व्यवहार आदि गुण अलग-अलग हैं।

उच्च वर्गीय गोमेद—यह गोमेद ही सामान्यतया प्रसिद्ध गोमेद है, इसका रवा चतुष्कोण होता है। ऊपर दिये गये भौतिक गुण इसी वर्ग के रत्न के है। इसको द्विवर्णिता इतनी अधिक होती है कि अकेली आख से ही दीख जाती है। इसमे दो रग, नीला और श्वेत. दिखायी देते हैं। सरलता से चिरता नही है। अपकिरणन भी इसका हीरे से थोडा ही कम, ०३८, है। इसलिये यह खूब दमकता है।

निम्न वर्ग का गोमेद—इसका रूप रवे का रूप नही होता। यह हरे रंग की झाइयों में मिलता है। भूरे और नारगी रगो में भी पाया जाता है। उच्चवर्ग के गोमेद की अपेक्षा इसके वर्तनाक कम हैं। द्विवर्णिता बहुत कम है।

मध्यम वर्ग का गोमेद—यह गोमेद गुणो मे उपर्युक्त दोनो के बीच का होता है। यह गहरे लाल रग और भूरापन लिये हुए लाल रग का होता है। गरम करने पर दुहरे वर्तन, वर्तनॉक तथा दड़क में कुछ परिवर्तन होकर यह उच्च वर्ग का गोमेद बन जाता है।

गोमेद रत्न इतने विविध रगों मे पाये जाते है कि उनके नाम अलग-अलग है। लाल से लेकर लाल झाई वाले भूरे गोमेद अग्रेजी मे जैसिथ (Gacinth) और पीताभ पीले रत्न जागुर्न (Gargoon) कहलाते है। रगरहित गोमेद तो पीले अथवा भूरे रत्नो को गरम करने से ही बनते है। रगीन रत्न कभी-कभी धुधले होते है—परन्तु इन में 'जाज्वल्यमानता' साफ दिखायी देती है। रग रहित अथवा श्वेत तो चमक में हीरे का मुकाबला करते ही है। दुरगी चमक केवल नीले में ही दिखायी देती है।

स्रोत तथा प्राप्तिस्थान—गोमेद सायेनाइट शिला में काफी मात्रा मे पाया जाता है, यो ही एक ही स्थान से बहुत अधिक मात्रा में यह प्राय नही मिलता। अभी तक सबसे अधिक भारी रवा जो मिला है, उसका तोल २५ पौड था। गोमेद रत्न गोल चिकने पत्थरों और पानी में घिसे रत्नों के रूप में पानी से घुलकर नीचे बैठी तलछट में मिलता है। ऐसी तलछट श्री लका, क्वीस लैड (आस्ट्रेलिया) तथा थाईलैंड में विशेष रूप से पायी जाती है।

श्री लंका से जो गोमेद मिलते है—वे सबसे सुन्दर गोमेद रत्न होते है। यहाँ के रगहीन गोमेद आज भी 'मैतुरा' हीरे के नाम से

प्रसिद्ध हैं; पहले तो इन्हे हीरा ही समझा जाता था। **न्यू साउथ वेल्स** के मडगी स्थान से सुन्दर लाल रंग के गोमेद मिलते हैं। पीले-भूरे गोमेद दक्षिणी अफ्रीका की किंबरली खानो मे हीरो के साथ होते हैं। **भारत** तथा श्री लंका मे भी सुन्दर नीले और नीले-हरे गोमेद होते है। इनमे द्विवर्णिता होती है और इस प्रकार बैंजनी तथा पीले दो रग यहा दिखायी देते है। एक लेखक के अनुसार **बर्मा** (मोगोक) के गोमेद मे पानी तथा लोच अधिक होते है—श्याम आभा थोडी होती है। ये रत्न सर्वोत्तम जाति के माने जाते हैं। परन्तु यह माल बहुत कम निकलता है।

श्रेष्ठ गोमेद—'रसेन्द्र चूडामणिकार' के लेखनानुसार गाय की मेद अर्थात् चरबी के रग का, हलके पीले वर्ण का, रत्न गोमेद कहलाता है। श्रेष्ठ तथा गुणकारी गोमेद वह है जिसमे निर्मल गोमूत्रकी-सी आभा हो; चिकना, स्वच्छ, समडोल, भारी, दल रहित, (परतदार न हो) मृदु और प्रकाशवान् हो।

दोष—जो गोमेद दूर से स्वच्छ गोमूत्र के समान न प्रतीत होता हो, परतदार हो, दडकदार न हो, पीले काच-खण्ड सा दिखायी देता हो, वह गोमेद अच्छा नही होता।

असली-नकली मे अन्तर—श्वेत गोमेद और हीरे मे भ्रम पैदा हो जाया करता है। वर्तनाक तथा अपकिरणन ऊँचा होने के कारण दमक मे यह हीरे की बराबरी करता है। परन्तु इसका आ घ हीरे से बहुत अधिक होता है और चमक भी हीरक द्यु ति न होकर विरोजा-जैसी होती है। इसके पिछले भाग के अनीक, दुहरेवर्तन के कारण, दुहरे दिखायी देते है। गोमेद की बराबरी के दूसरे रत्न **स्फीन**–की कठोरता ५ ५ है जो गोमेद से बहुत कम है। कभी-कभी अनिच्छित रग वाले हीरे के पिछले तल पर नीले रग की झोल फेर देते है। परन्तु बेजीन, स्पिरिट अथवा निरे गर्म पानी, मे धोते ही इसका रग उड जाता है।

'आयुर्वेद प्रकाश' के अनुसार किसी पात्र में दूध के साथ जिस गोमेद को रखने से वह दूध गोमूत्र के से रंग का दिखायी दे और कस पर घिसने पर भी जिसकी कान्ति वैसी की वैसी बनी रहे, कम न हो; वह गोमेद उत्तम जाति का माना जाता है। **कई लोग** गोमेद का दूसरा नाम **अकीक** बताते है, परन्तु गोमेद एक-से, एक ही रग का होता है और अकीक के पत्थर कई-कई रग के होते हैं।

रोगों में प्रयोग—आयुर्वेद ग्रन्थो के अनुसार गोमेद कफ-पित्त को नष्ट करता है; क्षय तथा पाण्डुरोग को दूर भगाता है; दीपक, पाचन, रुचि वर्धक, त्वचा की काति तथा बुद्धि के वैभव को बढाता है। अनपच, मस्तिष्क की दुर्बलता तथा चमड़ी के रोगो मे लाभदायक रहता है।

दैवी शक्ति—कुम्भ राशि में सूर्य के आने पर अर्थात् १५ फरवरी से १४ मार्च तक की अवधि में उत्पन्न व्यक्तियो का प्रतीक ग्रह राहु है। इन्हे गोमेद का धारण करना इष्ट है। किसी सुधरे ज्ञानवान् ज्योतिषी से अपनी जन्म कुण्डली सुधरवाकर, उसकी सम्मति से ही राहुरत्न, गोमेद, धारण करना चाहिये, (देखिये इसी पुस्तक के पृष्ठ ५३ से ६८ पृष्ठ तक)। राहु रत्न को धारण करने का मत्र इस प्रकार है —

ॐ। कया नश्चित्र आ भुव दूती सदा वृध सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥

धारण करने के लिये गोमेद काभार ६, ११ अथवा १३ कैरेट हो, ७, १० अथवा १६ रत्ती कभी न हो।

बदल—'तुरसावा' उपरत्न इसका बदल है। यह नरम तथा कम दड़क (आ. घ) का उपरत्न है। पीतरक्त आभा वाला होता है, किसी-किसी मे मलिनता तथा हरी झाई भी होती है।

केतुरत्न—लहसनिया

> बिल्ली की आंख के समान पीला सा, तथा लहराते सफेद डोरे वाला, वायुगोला तथा पित्त प्रधान रोगो का नाशक; सरकारी रोष, आकस्मिक दुर्घटना व गुप्त शत्रुओ से बचाने वाला।

विविध नाम **संस्कृत**—वैदूर्य, बिडालाक्ष, अभ्ररोह, राष्ट्रक, मेघखराकु र, बाल सूर्य, विदुर रत्न आदि।

हिन्दी-पजाबी—वैदूर्य-लहसनिया, **उर्दू-फारसी**—लहसनिया अंग्रेजी Cat's-Eye या Cymophane

भौतिक गुण—आपेक्षिक घनता-३ ६८ से ३ ७८ तक, कठोरता—८ ५० ; वर्तनाँक -१ ७५० ; से १ ७५७ तक ; दुहरावर्तन, मान—० ०१० अपकिरणन—० ०१५ रचना घनात्मक है।

बिडालाक्ष अथवा साइमोफेन रत्न वैदूर्य अथवा हेम वैदूर्य की तीन किस्मो मे से एक किस्म का नाम है। इसके विविध रग अ धेरे मे उसी प्रकार चमकते हैं जैसे कि बिल्ली की आखे अन्धेरे मे चमकती हैं। इसमे रेशम के समान चमक तथा हरा रग होता है। कैबोशौग काट में काटे जाने पर प्रकाश एक रेखा मे केन्द्रित हो जाता है और फिर रत्न की सतह पर फैलता है। घुमाने पर प्रकाश की इस रेखा का स्थान वदल जाता हैं और इस प्रकार बिल्ली की आँखो—जैसा दीखने लगता है। यह रत्न बहुत लोक-प्रिय हो चला है। रासायनिक सगठन की दृष्टि से यह बैरिलियम का ऐल्यूमिनेट है।

स्रोत तथा प्राप्तिस्थान—यह मणि पेग्मेटाइट, नाइस तथा अभ्रकमय परतदार शिलाओ मे पायी जाती है। नालो की तल-छटो में भी यह पायी जाती है। यह रत्न **श्री लका**, ब्राजील तथा चीन मे पाया जाता है। वर्मा की मोगोक खान का बेडूर्य उत्तम माना जाता है। त्रिवेन्द्रम (दक्षिण भारत) से भी

यह रत्न मिलता है। ब्रिटिश सग्रहलाय में क्राइसोलाइट के साथ ३५ ५ मिलीमीटर लम्बा तथा ३५ मिलीमीटर चौड़ा [illegible] एक सुन्दर विडलाक्ष भी रखा हुआ है।

एक अद्वितीय विशेषता—बिडालाक्ष की एक अनुपम विशेषता इसका बिडालाक्षि प्रभाव है। इस रत्न को जब-जब हिलाया-डुलाया जाता है तो इसमें से दूधिया-सफेद, नीली सी अथवा हरीसी-सफेद अथवा सोने की सी पीली चमक निकलती है। यह विशेषता सिर पर से उन्नतोदर अथवा गुम्वद के आकार में काटने पर खूब अधिक हो जाती है। सूर्य के प्रकाश में अलटा-पलटी करने पर इसमें चादी की पतली तार जैसी श्वेत रेखा दिखायी देती है।

भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में वैदूर्यमणि के लिये लिखा है .—

एकं वेणु-पलाश-पेशलरुचा मायूर-कण्ठत्विषा
मार्जारेक्षण पिङ्गलछविजुषा ज्ञेयं त्रिधा छायया।

अर्थात् उत्तम वैदूर्यमणि के तीन भेद हैं—१ एक वह जिसमें वास और ढाकके पत्ते के समान काति झलके; २; दूसरी वह जिस की छाया मोर के कण्ठ की छाया जैसी हो और ३ तीसरी वह जिस में विल्ली के आख की छवि-सरीखी पिगल वर्ण की छाया हो,

श्रेष्ठ-विडालाक्ष—जो लहसनिया काली तथा श्वेत आभा लिये हुआ हो; स्वच्छ हो; दड़कदार हो, खिलवाँ हो, वीचों बीच श्वेत बादल से लहराते श्वेत दुपट्टे के समान श्वेत रेखा वाला हो, वह शुभ कहलाता है। यह श्वेत सूत जितना चमकदार और सीधा हो, गोमेदक उतना ही अधिक उत्तम माना जाता है। कभी-कभी यह सूत नही होता, प्रकाश फैला हुआ रहता है। इसको चादर कहते हैं। सूतरहित वैडूर्य को करकेतक (Chrysolite) कहते है। जो कस पर घिसने से स्वच्छ प्रतीत होता हो वह उत्तम तथा शुभ माना जाता है।

दोषयुक्त—केवल कालीझाई वाला, पानी जैसा दिखायी देने वाला, चिपटा हुआ, दडकरहित, किरकिरा, डोरी में ललाई लिये

हुआ गोमेद अशुभ या खोटा कहलाता है। एक दूसरे ग्रन्थ के अनुसार चमक न होना, मिट्टी तथा पत्थर के भाग का वीच मे होना, टेढ़ा होना, चिपटापन आदि दोष गिनाये गये है।

रोगो मे प्रयोग—आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार, वैदूर्य रत्न गर्म, खट्टा, कफ-वायु के प्रकोप को शान्त करने वाला, वायु गोला आदि रोगो का नाशक है। पित्त प्रधान सभी रोग भी नष्ट करता है।

दैवीगुण—केतु प्रभावाधीन उत्पन्न व्यक्तियो को यह रत्न धारण करना चाहिये। अर्थात् वे व्यक्ति जो मीनराशिस्थ सूर्य के समय अर्थात् १५ मार्च से १४ अप्रैल तक जन्मे हो इसको पहनते हैं। केतु के अनिष्ट प्रभाव को कम करने के लिये उन्हे चाँदी मे ३, ५ अथवा ७ कैरट का विडालाक्ष धारण करना चाहिये। इस समय निम्नलिखित मत्र का जाप करना चाहिये।

ॐ केतु कृण्वन्न केतवे पेशोमर्या अपेशस्रे समुषदिभ रजायथा ॥

धारण करने के लिये विडालाक्ष का तोल २, ४, ११ अथवा १३ रत्ती कभी नही होना चाहिये।

रत्न धारण करने वाला सरकारी दण्ड, आकस्मिक दुर्घटनाओ तथा गुप्त शत्रुओ से सुरक्षित रहता है।

प्राचीनो का विश्वास था कि वैदूर्यमणि आनेवाले रोग की सूचना पहले ही दे देती है; इसमे वैज्ञानिक कारण यह प्रतीत होता है कि कोई भी रोग हो वह त्वचा द्वारा शरीर का विष मुक्त करता है। ज्वर मे त्वचा सूख जाती है और जुकाम मे गीली हो जाती है। वैदूर्यमणि सच्छिद्र होती है। अत हाथ आदि पर तावीज के रूप मे वाधी हुई वैदूर्य मणि पर शरीर के तापमान अथवा आर्द्रता आदि का प्रभाव पडता है और वह अपना रग तथा वर्ण बदल लेती है।

जन्म कुण्डली के अनुसार धारण करने के लिये इस पुस्तक के पृष्ठ ५३ से ६८ तक का प्रकरण पढिये और किसी प्रवीण ज्योतिपी की सहायता लीजिये।

बदल—इसका वदल इसका उपरत्न गोदन्ती है।

प्रसिद्ध उप रत्नों का परिचय

विक्रान्त की विचित्रता—एक ही खण्ड लाल भी हरा भी;—हीरे का स्थानापन्न ; फिरोजा के फीका पड़ने का कारण; कांच और बिल्लौर में अन्तर; अक़ीक़ की विशेषता-धारियाँ;

विक्रान्त—संस्कृत में वैक्रान्त, विकृन्तक, और क्षुद्र कुलिश के नाम से प्रसिद्ध इस उपरत्न के विषय मे आजकल सदेह उत्पन्न हो गया है। परन्तु फिर भी विद्वान् बहुमत से 'टूर्मलीन' नाम से प्रसिद्ध खनिज पत्थर को ही विक्रान्त मानते है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार टूर्मलीन एक षड़भुज रवा है—इसके वर्तनाक १ ६२४ तथा १ ६४४ है। दुहरावर्तन लगभग ०२० आ घ ३ ०६ है। यह पत्थर अपनी द्विवर्णिता के लिये प्रसिद्ध है। गहरे हरे रग के पत्थर में अत्यन्त गहरा भूरा-सा हरा और हलका पीताभ हरा ये दो रग; नीले टूर्मलीन में हलका तथा गहरा हरा—ये दो रग दिखायी देते हैं। इसकी कठोरता ७ से ७·५ है और अपकिरणन बहुत कम है।

यह अपने बहुत सारे विविध रंगो के लिये प्रसिद्ध है—अर्थात् हलके से गहरे लाल रग और नीलारुण (बैजनी-सा) रग के ; पीताभ—हरे , भूरे; हरे-से भूरे; बिना रग के ; काले ; हलके से गहरे आसमानी रग के; पीले-भूरे, और भूरे-से नारगी रग के विक्रान्त मिलते है। **फिर एक ही रत्नखण्ड में दो रगों के**—प्राय. लाल और हरे—वैक्रान्त भी खूब पाये जाते है। रत्न रूप में पारदर्शक ही अच्छा समझा जाता है; परन्तु आभूषणों में अपारदर्शक काला भी खूब चलता है। अपने भौतिक गुणो के द्वारा यह दूसरे रत्नों से शीघ्र ही पृथक् पहचान में आ जाता है।

गुण कर्म—आयुर्वेद में यह हीरे का स्थानापन्न है। वैक्रा त भस्म का प्रयोग ज्वर, कोढ़, पाण्डुरोग, सूखा रोग, पागलपन, प्रमेह, सास

तथा खीसों मे होता है।

२ **फ़िरोजा**—सस्कृत मे इसको पेरोज तथा हरिताश्म कहते हैं, हिन्दी मे फिरोजा और अग्रेजी मे Turquoise कहते हैं। यह एक अर्ध-पारदर्शक से लेकर अपारदर्शक तक रत्न खनिजहै। इसकी सब से बढिया किस्म बहुत ही हलके आसमानी रग की और घटिया किस्म पीली-सी हरी होती है। बढिया भी पहनने के कुछ समय बाद हरा-सा आसमानी हो जाता है। कृत्रिम रग देकर इसको निखार दिया जाता है परन्तु तेज अमोनिया जल से धोते ही बनावटी रग उड़ जाता है। फिरोजा पहनने वाले को साबुन से स्नान करते समय इसको उतार कर रख देना चाहिये—साबुन से इसका रंग फीका पड जाता है।

प्रयोग—यह सब प्रकार के विष के प्रभाव को दूर करता है, खून की खराबी तथा नेत्र रोगों मे भी लाभदायक है।

परीक्षा विधि—प्लास्टिक, पैरीफीन, मोम तथा तैल भरकर कृत्रिम फिरोजा बनाया जाता है। लाल गरम की हुई सूई की नोक इनके पास लाने से प्लास्टिक में से सडे अडे की सी बदबू आने लगती है और पैराफीन आदि पिघलकर बह जाती है।

स्फटिक वर्ग के उपरत्न—स्फटिक वर्ग रत्नो का सबसे अधिक बडा वर्ग है। इसमें बहुत से खूब प्रचलित रत्न आ जाते हैं। व्यापारिक दृष्टि से इनका मूल्य अधिक नही है परन्तु फिर भी ये बडे रोचक रत्न हैं तथा बहुत पुराने जमाने से काम मे आ रहे हैं।

रंगो तथा किस्मो में अलग-अलग होते हुए भी ये सभी सिलिका के ऑक्साइड हैं। इनके भौतिक गुण लगभग एक-से है। कुछ महत्त्व पूर्ण स्फटिक-रत्नों का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

३ **स्फटिक** या बिल्लौर सामान्यतया स्फटिक नाम से जिस पदार्थ को समझा जाता है, सस्कृत मे उसका नाम **सितोपल, शिवप्रिय** है। हिन्दी में इसको **काचमणि**, गुजराती मे **फटक** और अग्रेजी में Rockcrystal कहते हैं।

यही एक रंगरहित उपरत्न है जो बहुत भारी मात्रा में मिलता है। यो तो इसमें से 'ज्वाला' नही फूटती और 'निर्जीव' सा लगता है, परन्तु सावधानता से काटने तथा पालिश कर देने पर खूब सुन्दर निकल आता है। आभूषणों के अतिरिक्त ऐनको के लैंस भी इससे बनते हैं तथा प्रकाश सम्बन्धी दूसरे यंत्रो में भी काम में आता है।

कांच तथा बिल्लौर में अन्तर—छूने पर यह काच से अधिक ठंढा लगता है; इससे अधिक कठोर तथा इसके पहलों के किनारे कांच के किनारो की अपेक्षा अधिक नोकदार तथा अधिक सफाई से कटे होते है। काच की चमक के समान इसकी चमक कभी मन्द नही पड़ती।

चिकित्सा की दृष्टि से यह मधुर, शीत, बल्य तथा पित्तनाशक है। बुखार, जलन, रक्तपित्त तथा दुर्बलता मे इसकी भस्म दी जाती है।

४. **अक़ीक़**—सस्कृत में इसका नाम **रक्ताश्म** तथा अंग्रेजी में Agate है। यह स्फटिक वर्ग के उन रत्नो मे से है जो खूब प्रचलित है। **धारीदार होना इसकी बड़ी विशेषता है;** ये धारिया भले ही इतनी सूक्ष्म होती है कि सूक्ष्म वीक्षण यंत्र से ही दीख पड़ती है। सर डेविड ने एक ऐसे रत्नखण्ड में प्रति इन्च १७००० सुस्पष्ट धारियां देखी थी। ये धारिया बहुत कुछ समान्तर होती है—कभी सीधी रेखाओं में और कभी समकेन्द्रिक वक्र रेखाओं में। इसका सारा सौन्दर्य धारियों के रगो के मेल पर निर्भर है।

इनको कृत्रिम रंग देने का एक पृथक् उद्योग बना हुआ है, इसका प्रमुख स्थान जर्मनी है।

चिकित्सा में—अकीक का प्रयोग स्तम्भन तथा मेध्य औषधि के रूप में होता है। रक्तपित्त, प्रदर, शुक्रमेह तथा मानसिक रोगों में लाभदायक है।

५. **संग सुलेमानी**—इस रत्न-पत्थर में भी अक़ीक की तरह

रगो की धारिया होती है जो सीधी और समातर होती है। प्राचीन लोग इसके प्याले, फूलदान आदि बनाया करते थे। नगीने, मालाओं के दाने, चाकू की मूठे आदि बनाने का उद्योग आजकल भी खूब होता है।

गुण—इसके अकीक से मिलते-जुलते हैं—यह केवल एक प्रकार से उसकी ही एक किस्म है। **अन्तर** केवल इतना है कि इसके रग मे काली या भूरी झाई होती है। और इस पर श्वेत, हरे, भूरे और काले रग के खण्ड होते हैं।

६ **संगेयशब**—यह भी एक पुराना और प्रसिद्ध रत्न-पत्थर है। सस्कृत मे इसको **हरिताश्म**; हिन्दी मे हरितमणि या **संगयशब**; फारसी मे **यश्म**; और अ ग्रेजी में 'जेड' (jade) कहते है।

इसकी दो किस्मे हैं—१ **जेडीट** (jadeite) और **नेफ्राइट**। **जेडीट** का रग सेव से हरे से लेकर पन्ने-जैसे हरे तक होता है। हरिताभ-सफेद और सफेद रग का भी यशब पाया जाया है। प्राय यह अपारदर्शक ही होता है। सफेद रग के धब्बे होना अथवा रग-विरगा होना इसका दोष माना जाता है। चमक तैलीय होती है; हा इस पर चमक अच्छी आती है। वढिया यशब बहुत कम मिलते हैं। वढिया यूरोप तो कभी पहुँचते ही नही, क्योकि सब चीन मे ही खप जाते है। चीन में इसको बहुमूल्य रत्न माना जाता है—वहा इसका नाम यू (yu) है और बहुमूल्य रत्न को भी वे 'यू' ही कहते है। यशद बहुत कुछ रेशेदार होता है, इसलिये नक्काशी करना कठिन होता है। फिर भी चीन मे इसपर नक्काशी खूब होती है।

७ **लाजावर्त**—सस्कृत मे इसको **नृपोपल** और **नीलाश्म** भी कहते है। हिन्दी मे **लाजवर्द** और अ ग्रेजी मे 'लेपिस लैजूल' Lapis Lazuli कहते है।

यह एक सुन्दर, खूब गहरा नीला, अपारदर्शक पत्थर है।

इस की सतह पर प्राय पीतआभा बिखरी रहती है। बड़े-बडे और सुन्दर रंग के पत्थर बहुत कम मिलते है।

इस पर नक्काशी अथवा इसमे छेद करना कठिन होता है। यह अपनी सारी देही में एक-सा कठोर नही होता। गरम करने पर इसका रंग उड जाता है जो ठढा होने पर लौट आता है। स्फुर-दीप्ति भी अनेक पत्थरों में पायी जाती है ।

पहले जब इसकी बहुतायत थी तो फूलदान, तथा प्याले खूब बनाये जाते थे। गले के हार, चाकुओं की मूठे आदि आज भी बनती है। पुराने लोग इसको 'नीलम' ही कहा करते थे।

असली की पहचान—इसका चूरा, यदि जलमें डालने पर रग न बदले तो इसको शुद्ध कहा जायेगा।

चिकित्सा की दृष्टि से—यह हृद्य, कटु, तिक्त, पित्तशामक दीपन और पाचन है। रक्तशोधक और आर्त्तवजनक है । सूखा रोग, फिरग रोग, प्रमेह, पाडु तथा अन्य रक्त विकारो में इस की भस्म का प्रयोग किया जाता है।

८ **सूर्यकान्त**—तथा ९ **चन्द्रकान्त**—ये दोनो मणिया 'फैल्स्पार' वर्ग की है। इस समूह के खनिज विशेष महत्त्व के नही है। ये सभी एल्यूमिनियम तथा पोटाशियम, सोडियम अथवा कैल्शियम किसी एक अन्य धातु के सिलिकेट है।

सूर्यकान्तमणि—काच के समान श्वेत परन्तु लाल-सा, सल्मे-सितारेटगा रत्नपत्थर है। सूर्य की उपस्थिति मे इससे अग्नि उत्पन्न होती है। यह मुख्यतया नौर्वे में मिलता है; फिनलैड तथा वोहेमिया में भी इसकी खाने है।

चिकित्सा की दृष्टि से—यह उष्णवीर्य, मेध्य, रसायन तथा कफवात-नाशक है

चन्द्रकान्तमणि—पारदर्शक और रग रहित रत्न पत्थर है। इस पर प्राय दूध जैसी चमक होती है। इस की परते बहुत भीनी होती

हैं—उनसे प्रकाश प्रतिक्षिप्त होकर दूधियापन उत्पन्न करता है। पीताभ पत्थर सस्ते होते हैं तथा सफेदी वाले सर्वथा मूल्य-रहित माने जाते हैं। इसकी चमक किन्ही निश्चित दिशाओ मे ही दीखती है। उत्कृष्टतर चमक के लिये इनको कैबोशौग काट मे काटा जाता है और पहल कभी नही बनाये जाते।

मुख्यतया लका से प्राप्त होता है। चन्द्रमा की किरणो से यह गीला हो जाता है। **स्निग्ध; शीत** तथा **पित्तशामक** है। रक्तपित्त, दाह, ज्वर तथा हृदय रोग मे प्रयुक्त होता है।

१० **दूधिया पत्थर अथवा उपल**—यह सुन्दर पत्थर देखने में भी शेष रत्नो से अलग है। इसका नकली वनाना भी कठिन है, सश्लिष्ट तो अभी तक बनाया ही नही जा सका है। इसके एक रत्न खण्ड मे विविध प्रकार के रगो की एक विशेष प्रकार की चमक दीख पडती है। इस चमक का अपना अलग नाम 'उपल-भासा' रखा गया है।

अग्रेजी मे इसे 'ओपल' कहते है। हिन्दी मे इसका प्रसिद्ध नाम दूधिया पत्थर है। पहले इसका बडा आदर था परन्तु उन्नीसवी शती मे यह भाग्यविनाशक माना जाने लगा। अब जब से आस्ट्रेलिया से सुन्दर चमकीले रत्नोपल मिलने लगे, इसका फिर से चलन हो गया है। **आस्ट्रेलिया के दूधिया पत्थर एक क्षण में तो निपट काले और अगले ही क्षण में, थोड़ा हिलाने से ही,** चमकदार सिंदूरी ज्वाला छोडने लगते है।

इन रत्नो की बनावट रवेदार नही है। कठोरता ५ ५ से ६ ५ तक और आ घ १ ९५–२ ३ ही है। चमक इस की कॉच जैसी मद शैलीय होती है।

दूधिया पत्थर की दो किस्में है—काली तथा सफेद। दोनो से लाल चिनगारियाँ सी फूटती है। अधिक लम्बी चिनगारियो वालों का मूल्य अधिक नही आका जाता।

दूधिया पत्थर की एक किस्म वह भी है कि जो है तो पारदर्शक, परन्तु उसमें उपलभासा नही दिखायी देती। ऐसे दूधिया पत्थर को 'कान्त-ओपल' (fire-opal) कहते है।

यह कठोर नही होता; इस पर खरौच सहज ही में पड जाती है। तापसे इसका रग बिगड़ जाता है। इसको 'कैबोशौग' काट में काटा जाता है।

११ **रुद्राक्ष-अथवा रात-रतुआ** (Carnelian) भी एक प्रसिद्ध उपरत्न है। यह स्फटिक वर्ग में ही गिना जाता है। **कम गहरे लाल से नारंगी रंग तक का** होता है। यह अपने रंग के 'जेड' अथवा 'संगेयश्ब' तथा कान्त-रत्नोपल के सदृश होता है। इस की नकल काच के रुद्राक्ष बनाकर की जाती है। प्राचीन काल में यह अदन, बसरा व भारत में मिलता था। आजकल श्रेष्ठ रुद्राक्ष काम्बे, सूरत और बम्बई से प्राप्त होता है। इस पर नक्काशी का काम बहुत सुन्दर होता है।

कहते हैं कि जिस को रात में ही बुखार आता हो उसके शरीर से स्पर्श करता रुद्राक्ष बाँधने से लाभ पहुँचाता है। यह नक्सीर को बन्द करता है। यह भी मान्यता है कि यह जिन व भूतों को भगा देता है।

१२ **संगसितारा (तारामंडल)**—अंग्रेजी में इस का नाम 'गोल्ड स्टोन' है। यह गेरुए रग का रत्न है और इसमें सोने-सरीखे छींटे चमकते है। असली सगसितारे में अत्यन्त सूक्ष्म रूप में पानी तथा हरी झांई रहती है; नकली में नही होती। स्फटिक की गुलाबी किस्म में ही तारामंडल दिखायी देता है। यह अर्धपार-दर्शक से पारभासी तक होता है और हल्के लाल रंग से बैंजनी-आभा लिये लाल रग तक का मिलता है। कैबोशौग काट में काटने पर खूब खिल जाता है।

१३. **लालड़ी-सूर्यमणि अथवा लाल कंटकिजमणि** (Spinel-Red)

इस[illegible]श 'स्पाइनेल रूबी–कटकिज माणिक्य भी कहा जाता है।

कटकिज या स्पाइनेल रत्नो का एक समूह है जिस मे कई रग की मणिया है, इनमे से लाल रग की मणि लालडी कहलाती है। इसके गुण माणिक्य (लाल) के समान हैं। सूर्य की दशा मे इस को चादी मे जडवाकर रविवार को मध्यान्ह के समय धारण करते हैं। इसकी पिष्टी अनेक रोगो मे काम आती है। इसमे कालिमा हो तो यही पत्थर 'नरम' कहाता है। कभी-कभी इसको श्याम माणिक्य समझ लिया जाता है परन्तु माणिक्य की अपेक्षा यह कोमल तथा हल्का होता है।

१४ **कार्केतक**——स्फटिक वर्ग का यह सुन्दर रत्न सेव के से हरे अथवा पीताभ हरे रग का होता है और इसमे दरारे अथवा भूरे रग के धब्बे आदि ऐब पाये जाते है इसका रग कभी गहरा हरा नही होता, इसकी चमक हरितमणि (जेड अथवा सगेयश्ब) से भी अधिक मद होती है। यह अर्धपारदर्शक अथवा पार भासक रत्न है। **इसकी सबसे बडी कमी यह है कि धूप लगने पर या गर्मी पहुंचने पर रंग छोड़ जाता है**

१५ **तृणमणि**—इसको अग्रेजी मे (Amber) कहते है यह खनिज पदार्थ नही, जैविक है। रग इसका हल्के पीले से लेकर गहरा भूरा तक होता है। फिर इसको विविध रगो मे रगा भी जाता है। नकली प्लास्टिक की तृणमणि नमकीन पानी मे डूब जाती है, असली तैरती है। रगडने पर बिजली उत्पन्न हो जाती है। इसीलिये हलके फुलके कागज व तिनके इसकी ओर खिचने लगते है; इसी आधार पर नाम **तृणमणि** है।

—०—

भूल सुधार—कृपया कु० स० ६ को कु० स० ८ समझे और कु० स० ८ के स्थान पर कु० स० ६ पढें।